# प्रतिनिधि कहानियां

[ हिन्दी विश्वविद्यालय की मध्यमा परीक्षा के पाठ्यक्रम में स्वीकृत

संकलनकर्त्ता

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

सम्वत् २०१०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

## प्रकाशकीय

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानीकारों की सुन्दर रचनाओं का संकलन किया गया है। इसके सम्पादक श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिन्दी के एक लब्धप्रतिष्ठ कहानी लेखक हैं। वाजपेयीजी ने इस संग्रह का सुरुचिपूर्ण ढंग से संकलन किया है। साथ ही कहानी-साहित्य पर एक विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी दी है। हमारा विश्वास है, प्रस्तुत संग्रह से परीक्षार्थियों को समुचित लाभ होगा।

नागपंचमी, २०१०

साहित्य मन्त्री

# विषय-सूची

# कहानी की कथा

[ १ ]

रिचर्ड बर्टन का कथन है—"कहानी संसार की सबसे पुरानी वस्तु है। इसलिए आश्चर्य नही कि इसका प्रारम्भ उसी समय से हुआ हो, जब मनुष्य ने घुटनों के बल चलना सीखा था।"

तात्पर्य्य यह कि कहानी का जन्म हुए सैकडों युग बीत गये। मनुष्य ने समाज बनाया, समाज ने अपनी सुविधा के लिए कुछ नीतियाँ और रीतियाँ स्थिर की, जिनसे मनुष्य के सस्कार बने और फिर कालान्तर मे उन्होंने एक सभ्यता का रूप ग्रहण कर लिया। सभ्यताओं ने करवटें लीं, तो मानवी संस्कारों को नया जीवन मिला। युग-पर-युग बीतते चले गये। मनुष्य ने जब घुटनों के बल चलना सीखा था, तब भी वह कहानी कह रहा था। आज जब वह वायुयान पर बैठ कर घूमता है, तब भी—उससे उतरते क्षण—एक कहानी कहता है। यह बात दूसरी है कि सभी मिलनेवाले उसकी कहानी सुन न पायें। न केवल एक कहानी के लिए, वरन् अन्य प्रकार की साहित्य-कलाओं के लिए भी, न्यूनाधिक रूप मे यही बात कही जा सकती है।

मनुष्य-शरीर मे आँखे सब के होती है, हृदय भी सब के होता है। पर ऐसे कितने व्यक्ति होते है जो किसी मार्ग पर चलते-चलते कही यकायक इसलिए रुक जाते है कि आगे चींटियों का जो दल दहिने से बायें चला जा रहा है, उनके अगले पद-क्षेप से उसके दस-बीस श्रमजीवी कहीं कुचलकर मर न जायें! सभी व्यक्तियों की रुचि एक-सी नही होती, न सभी व्यक्ति समान रूप से भावनाशील होते हैं। इसीलिए इस जगत-सृष्टि में निरन्तर जो बातें हम सुनते, जो दृश्य अपनी आँखों से देखते हैं, उन सबको न विशेष रूप से हृदयंगम कर पाते है, न उनमें निहित साहित्य-कला के मूलाधारों स लाभान्वित ही होते है।

एक दिन की बात है, हाथार्न और लागफेलो भोजन कर रहे थे। संयोग से उनके मित्र जेम्सफील्ड भी उनमें सम्मिलित थे। वार्तालाप के बीच उन्होंने कहीं कह दिया— 'देखो, मैं कितने दिन से हाथार्न से, एक आर्केडियन दन्त-कथा के आधार पर कहानी लिखने का अनुरोध कर रहा हूँ। पर इनसे लिखा ही नहीं जाता।

लागफेलो ने मुसकराते हुए पूछा—"कथानक क्या है?"

जेम्सफील्ड ने उत्तर दिया—"मुझे तो कथानक बड़ा ही मर्मस्पर्शी जान पड़ता है। आर्केडियन लोगों की भागदौड़ में कहीं एक लड़की अपने प्रेमी से छूट गयी। परिणाम यह हुआ कि उसने अपना समस्त जीवन उस प्रेमी की खोज में व्यतीत कर दिया। अन्त में प्रेमी तो उसे नहीं मिला, किन्तु वह लड़की उस प्रेमी को एक अस्पताल में मिल गयी। पर उस समय, जब वह मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई थी।"

कथानक सुन कर लांगफ़ेलो के आश्चर्य की सीमा न रही। प्रेरणा के आग्रह से तत्काल उनके मुँह से निकल पड़ा—"अगर तुम्हारा विचार इस कथानक के आधार पर कहानी लिखने का न हो, तो मैं कविता लिख डालूँ।"

हाथार्न ने तुरन्त अनुमति दे दी। लांगफ़ेलो का प्रसिद्ध काव्य 'इवेंजेलिन' इसी कथानक के अवलम्ब की रचना है।

*　　　*　　　*

कहानी की सर्वसम्मत परिभाषा लिखना दुष्कर है। यों तो साधारण रूप से यह समस्त जगत ही भिन्न रुचियों से निर्मित हुआ है, किन्तु जीवन की आधारभूत वृत्तियों में इतनी रुचि-भिन्नता प्राय. कम ही देखने को मिलती है जितनी कला के क्षेत्र में। डॉक्टर जानसन तो वैज्ञानिक बात में भी कलाकार की सी भाषा का प्रयोग कर बैठते थे। यथा—जानते है कि प्रकाश क्या वस्तु है; किन्तु हममें से कोई यह नहीं बता सकता कि वह क्या है और कैसा है।" कविता के सम्बन्ध में भी ठीक कुछ इसी प्रकार की सम्मति कालरिज की है। यथा—"कविता का पूरा-पूरा रस तभी मिलता है, जब वह भली भाँति समझ में नहीं आती।"

कहानी के विषय में भी विश्वविख्यात लेखकों के मत भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। यथा—

मिस्टर फोरस्टर—कहानी परस्पर सम्बद्ध घटनाओं का वह क्रम है जो किसी परिणाम पर पहुँचाता है।

फोस्टर महोदय की यह परिभाषा तो कुछ समझ मे आती है। पर किसी भी क्रम को कहानी कहना वाक्-शैथिल्य प्रकट करना है।

अब ह्यूवाकर महोदय का मत देखिये।

आप कहते हैं—"जो कुछ मनुष्य करे, वही कहानी है।" जो कुछ मनुष्य न करे या न कर पाये, लाख चेष्टा करने पर भी, किसी तरह न कर पाये, प्रश्न यह है कि वह कहानी क्यों नही है?

एडगर एलन पो का कथन है—कहानी एक प्रकार का वर्णनात्मक गद्य ह, जिसके पढने मे आध घटे से लेकर एक घटे का समय लगता है। अर्थात् एक बैठक मे जो पूर्ण रूप मे पढा जा सके, वही कहानी है।

यह परिभाषा भी कम अस्पष्ट नही है। 'कहानी एक प्रकार का वर्णनात्मक गद्य है' कथन में यह बात छिपी रह जाती है कि जिसे वे 'एक प्रकार का' वर्णनात्मक गद्य कहते है, वह वास्तव में किस प्रकार का है। और घंटे-आध घंटे का समय निर्धारित कर देने से परिभाषा के स्पष्टी-करण मे कोई विशेष सहायता नहीं मिलती।

परन्तु अन्यत्र उन्होंने लिखा है कि कथाकार यदि प्रवीण और कलाकुशल है तो वह अपनी कहानी मे पहले कोई घटनाचक्र देकर फिर उसमे अपने विचारों की कड़ियाँ डाल देने मे ग़लती कभी न करेगा। वह सतर्कता से अपने लक्ष्य और प्रभाव की कल्पना करेगा, उसके बाद वह घटनाओं की रचना और कथानक की संयोजना इस ढंग से करेगा कि उसका लक्ष्य और प्रभाव सर्वाधिक सफलता व्यंजित करने में समर्थ हो।

एडगर एलन पो महोदय अँगरेजी कथा-साहित्य के आदि निर्माता माने जाते है। कहानी-लेखन के साथ-साथ उन्होंने कथा-निरूपण के सम्बन्ध मे अपने सिद्धान्त और विचार भी सुन्दर ढग से व्यक्त किये हैं। उनके कथ नानुसार पाठकों की भावना तथा बुद्धि को स्पर्श करना लेखक के लिए आवश्यक है; पर प्रभाव की एकता का निर्वाह तो उसके लिए अनिवार्य्य रूप से आवश्यक है। वह घटनाओं का तारतम्य उपस्थित करे, वह चरित्र

निर्माण का ऐसा आदर्श ग्रहण करे, जो अभीष्ट प्राप्ति मे सहायक हो, पर उसमे भरती का एक शब्द न होना चाहिए।

वालपोल का कथन है—"कहानी मे घटनाओं का ब्यौरा होना चाहिये। कहानी घटना-दुर्घटना सकुल हो, उसकी गति तीव्र हो, उसका विकास अप्रत्याशित हो। उसे दुविधा के माध्यम से सकट की परिणति की ओर अग्रसर होना चाहिये। कहानी की स्थिति उस घुडदौड़ की भाँति है जिसका प्रारम्भ और अन्त ही महत्वपूर्ण होता है।"

जैक लण्डन का मत है—कहानी मूर्त, सम्बद्ध, त्वरागुणमयी, सजीव तथा रुचिकर होनी चाहिये।

जे० बी० ईसनवीन ने लिखा है—प्रभाव की एकता, कथानक की श्रेष्ठता, घटना की प्रधानता, एक प्रधान पात्र और किसी एक समस्या का का समाधान—कहानी मे ये पांच गुण होने चाहिये। कथानक में घटनाओं का तारतम्य, तीव्रता, घटना मे सम्भाव्य प्रकृति, कोई एक नाटकीय प्रसग, दुविधा और उत्सुकता होनी आवश्यक है।

बैरी पैन का मत है—उपन्यास एक तृप्ति और निराकरण है और कहानी एक प्रोत्साहन और उत्तेजन। इसी भाव को हम इस प्रकार भी कह सकते है कि उपन्यासकार यदि विश्लेषक है तो कहानीकार संश्लेषक।

हडसन का कथन है—कहानी मे चरित्र व्यक्त होता है और उपन्यास में विकसित।

प्रेमचन्द जी का कथन उपर्युक्त कथनो से कितना मिलता जुलता है। उन्होंने कहा था—"कहानी एक ऐसा उद्यान नही जिसमे भाँति भाँति के फूल बेल-बूटे सजे हुए है; बल्कि एक गमला है, जिसमे एक ही गमले का माधुर्य्य अपने समुन्नत रूप से दृष्टिगोचर होता है।"

स्टीवेसन का मत है—कहानी जीवन भर की प्रतिनिधि नहीं, उसकी कुछ दिशाओं का ही वर्णन है। लघुकथा पहले कथा है, उसके याद लघु, जैसा कि उसके अर्थ से व्यक्त होता है। यह समझ लेना अनुचित होगा कि वह एक संक्षिप्त उपन्यास होती है। लघुकथा मे यद्यपि नाटकीय गुण होता है तथापि यह समझ लेना भी अनुचित होगा कि वह नाटक के विविध भेदों में से एक है। वह निर्दिष्ट क्रिया के किसी अंश विशेष को ही व्यक्त करती है।

वह जीवन का कोई ऐसा प्रसंग उपस्थित करती है जो उसकी किसी एक परिस्थिति, अनुभूति अथवा घटना की नाटकीयता से, उसके सम्पूर्ण जीवन की एकरसता और परिपूर्णता की छाप पाठक के मन पर डाल देती है।

*　　　*　　　*

कल्पना की एकनिष्ठ प्राणमयता केवल कहानी मे नहीं, व्यापक रूप से सम्पूर्ण साहित्य के मौलिक आधार रूप में स्वीकार की जाती है। आज हम जीवन का जो भी रूप देखते है; निश्चित रूप से एक दिन वह केवल कल्पना रही होगी। मनुष्य के जन्म को ही सत्य रूप बाद मे मिला, पहले वह केवल कल्पना रहा होगा। कल्पना सत्य के कितने निकट होती है, इस बात पर प्राय: कम विचार किया जाता है। और कहानी के विषय मे तो साधारण जन-समुदाय की यह एक एकान्त मान्यता सी बन गयी है कि उसकी सारी बाते मनगढन्त होती है। विचार करके देखा जाय, तो यह धारणा बडी भ्रामक है। केवल कला और साहित्य के आँगन मे नही, जीवन के निखिल व्यापक चिरन्तन सत्य में भी कल्पना का अपना एक मौलिक स्थान है। जो कार्य हम निरन्तर किया करते हैं, क्रिया का रूप तो उसे बाद में प्राप्त होता है, पर कल्पना हमारे मन मे उसकी पहले से पहले हो जाती है। हम घर से चलते बाद को है, पहले निदिष्ट कार्य के सम्बन्ध में जो नाना प्रकार की बातें, संकल्प और उनके ऊहापोह सोचते है, उनके सबके मूल में केवल एक कल्पना होती है। यहा तक कि मनोमंथन की सृष्टि ही कल्पना के आधार पर होती है।

कहानी के मूल तत्वों पर विचार करते समय अभी हम इस निष्कर्ष पर पहुचे थे कि कथा में कोई एक घटना रहती है। अब यहां प्रश्न यह उठता है यदि वास्तव मे कोई घटना कहीं हो गई हो और उसका यथा-तथ्य वर्णन कर दिया जाय, तो क्या वह वर्णन मात्र कहानी हो जायगा? स्पष्ट है कि नही होगा। बात यह है कि घटना तो उस क्रिया का नाम है, जिसमें तुलनात्मक दृष्टि से मनुष्य के सजग प्रयत्न का हाथ अपेक्षाकृत कम—उसकी साधारण प्रकृति की असावधानता के मूल में निहित अदृष्टलीला का हाथ प्रमुख—रहता है। जिस प्रकार प्रत्येक घटना का स्थायी गुण उसका आश्चर्य्य-मूलक चमत्कार है, उसी प्रकार कहानी का स्थायी गुण भी उसमें निहित घटना की कल्पना का विस्मय और चमत्कार है। अर्थात किसी घटना

का वर्णन कला के उतना समीप नही, जितना उस [illegible] कल्पना का वर्णन। तात्पर्य्य यह हुआ कि कहानी मानव जीवन की उस वस्तुस्थिति, परिस्थिति और क्रिया-कलाप का वर्णन है जो केवल घटना नही, उस सत्य की कल्पना है, जो घटना के एकान्त क्रोड मे कही छिपा पड़ा रहा गया है।

कदाचित् इसीलिए हिन्दी कथा के आदि प्राण दाता स्वर्गीय प्रेमचन्द जी ने कहा था—बुरा आदमी भी बिल्कुल बुरा नही होता। उसमें कही-न-कही देवता अवश्य छिपा रहता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसी (छिपे सत्य) को खोलकर दिखा देना समर्थ आख्यायिका का काम है।

उन्होने उत्तम कहानी के लक्षण बतलाते हुए स्पष्ट कहा था—सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर होता है।

यह मनोवैज्ञानिक सत्य क्या है, अब हमे यह देखना है। सत्य से अभिप्राय यह मनुष्य के उस बाहिरी रूप मे है, जो छिपा नही रहता, प्रकट, साकार और प्रत्यक्ष होता है। कर्म से वह प्रकट होता है, सक्रियता से उसका आकार बनता है और संसार को वचन और कर्म से उसका अनुभव करने का अवसर मिलता है। किन्तु जीवन का सत्य केवल वचन और कर्म की सीमाओं मे घिरकर—क़ैद होकर—नही रहता। बहुत कुछ तो वह मन के अन्दर ही बना रहता है। यहा तक कि कभी-कभी ऐसे भी अवसर आते है, जब जीवन का सत्य मनुष्य की मृत्यु से प्रकट होता है।

महामना प्रेमचन्द जी के कथन का ऊपर जो उद्धरण दिया गया है, उसमें कथा के मनोवैज्ञानिक सत्य के केवल एक रूप की झलक मिलती है। जिस प्रकार प्रत्येक बुरे आदमी के अन्दर एक भलाई का दर्शन उन्होने किया, उसी प्रकार प्रकट रूप से भले आदमी का आकार-प्रकार, वैभव और कीर्ति रखने वाले व्यक्तियों के अन्दर कुछ ऐसी दुर्वृत्तिया भी छिपी रहती है, जो साधारण रूप से प्रकट नही होती और बहुधा प्रकाश मे भी नही आती। एक मुदा ढका हुआ, ऊपर से अभिराम रूप ही जिनका प्रकट होता है; पर कितना आडम्बर उनमे रहता है, कितनी बनावट के भीतर से वे झाकते है, कितने आवरणों के द्वारा वे प्रकाश मे आ पाते है, इन सब अप्रकट किवा छिपी हुई स्थितियो को साधारण रूप से प्रायः कम लोग ही जान पाते है

मनोवैज्ञानिक सत्य मनुष्य के इस वास्तविक रूप पर प्रकाश फेंकने का एक मुख्य साधन है। यथा—

जलेबियाँ लेकर एक लड़का सड़क पर जा रहा था। वह साईकल के धक्के से अचानक गिर पड़ा। साइकिल वाला इसकी परवा न करके जब आगे बढ गया, तब चौराहे के सपाही ने उसे रोक लिया। दोष किसका है, इससे वह अवगत था, क्योंकि सयोग से उसकी दृष्टि उसी ओर थी। लडके के पास लोग इकट्ठे हो गये, क्योंकि उस के हाथ मे चोट आ गयी, इस कारण वह रोने लगा। उसके रुदन ने सडक के निवासियो की सहानुभूति जगा दी। चौराहे का सिपाही जब साइकिल वाले को उस लडके के पास ले आया तब साइकिल वाले का ध्यान उस की ओर आकृष्ट हुआ। ओर यह जानकर उसने भी दुख प्रकट किया कि ऊँची नीची जगह मे गिर पडने के कारण उस का हाथ टूट गया। तत्काल वह अपने अपराध के लिए उपस्थित लोगों से क्षमा मागने लगा। पर अन्त में उस लडके को उसे हास्पिटल ले जाना पडा। लडके का हाथ टूट गया है और वह हास्पिटल चला गया है, दूसरी ओर जब इस बात की सूचना उसके पिता को मिली, तो वह भी हास्पिटल जा पहुचा। पर तब तक लडके की बाह चढा दी गयी और उस पर पट्टी बाँध दी गयी। थोडी देर मे उसका दर्द भी बहुत कुछ कम हो गया। वह चारपाई पर चुपचाप लेट रहा। इतने मे उसका पिता वहाँ आ गया। साइकिल वाले ने जब उस व्यक्ति को आते देखा, तो लडके के साथ-साथ वह भी रो पडा।

बस घटना केवल इतनी सी है। अब इसका मनोवैज्ञानिक सत्य देखिये। साइकिलवाले की बहिन का देहान्त हो चुका था, इसलिए अपने उस बहनोई के यहा उसका आना-जाना बहुत कम होगया था, जो यहा इस लडके के पिता रूप मे उपस्थित है। और वह लडका जिसका हाथ उसने तोड़ डाला है उसका सगा भानजा है। वर्ष के वर्ष बीत गये, पर उसको देखने का उसे अवसर नही मिला। इसीलिए वह अपने भानजे को पहचान न सका।

इस घटना में कहानी का मुख्य तत्त्व इस भावना मे निहित है कि जिस पहचान के बिना साइकिल वाला अपने सगे भानजे का हाथ तोड़ डालता है, वह मनुष्यत्व की पहचान में आज कितनी दूर चली गयी है। जब तक वह

लडका उस साइकिल वाले का भानजा नही है, तब तक वह ऐसी लापरवाही से चलता है कि उससे लडके को धक्का लग जाता और वह वही गिर पडता है। उसके संस्कार इतने गिरे हुए है कि पहले अपने ही धक्के से गिरते हुए जिस अपरिचित बालक को छोड कर वह भाग गया है जब उसे ज्ञात होता है कि वह तो उसका भानजा है, तब वह अपनी इस असावधानी पर रो पडता है! अपने सगे भानजे और सडक पर जाते हुए अपरिचित लडके के साथ होने वाले व्यवहारों में जो अन्तर उस साइकिल वाले व्यक्ति के सस्कारों मे आ गया है, वह उस सभ्यता का प्रतीक है, जिसने आज साधारण मनुष्य को पशु की भाँति बर्बर बना डाला है। और इसी ओर संकेत करना इस घटना मे निहित उस मर्मवाणी का मूल उद्देश्य है, जिसे हम कहानी मे मनोवैज्ञानिक सत्य कहा करते है।

समालोचना क्षेत्र मे अग्रणी आचार्य श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी का मत है—जिस प्रकार चित्र मे सारा खेल रेखाओं और रगो का ही होता है, सारा प्रभाव साधनों पर ही अवलम्बित रहता है, उसी प्रकार श्रेष्ट कहानी में व्यंजक और व्यग्य का, कथा और उद्देश्य का, एकीकरण हो जाता है।....नवीन कहानी साध्य को साधन से, उद्देश्य को कथानक से एकदम अभिन्न बनाकर चलती है। और कभी कभी तो जीवन-घटना ही—कहानी की वस्तु ही— अपना साध्य आप बन जाती है। घटना के मर्म में ही उद्देश्य छिपा रहता है।

वाजपेयीजी के कथन मे कहानी के प्रच्छन्न उद्देश्य पर विशेष बल दिया गया है। क्योंकि एक लेखक का कथन है—

"प्रत्येक कलाकृति एक न एक निगूढ नैतिक महत्व रखती है। पर आप (कृपा कर के कला की इस) प्रकृति पर अपना कोई विधान न आरोपित कीजिए।"*

जीवन की वास्तविक झलक देने मे कहानी की क्षमता साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा कही अधिक है। कविता के सम्बन्ध मे अँगरेजी कवि कालरिज का ऊपर जो अभिमत व्यक्त किया गया है, वह उनकी भिन्न रुचि मात्र का परिचायक नही है; उसमे कविता की एक कलात्मक परम्परा का

*एवरी वर्क अफ आर्ट हैज ए प्रोफ़ाउंड मारेल सिगनीफ़िकेंस बट यू मस्ट नाट टु इम्पोज योर ओन लॉज ऑन नेचर।

भी आभास मिलता है। मनुष्य की आत्मा का मूल स्वर यों तो व्यापक रूप से समस्त साहित्य है; किन्तु मनोवेगों का जो रूप शिल्प-विधान के माध्यम से कविता द्वारा प्रकट होता है, वह जितना अधिक स्थायी होता है, उतना ही चिन्तनहीन भी रहता है। कदाचित् इसका कारण यह है कि सभ्यता के युग युगान्त पार कर डालने पर भी कविता का गेय गुण अब तक यथावत् स्थिर है। जो कविता गेय नही हो पाती, वह स्मरण शक्ति की पावन गोद के आश्रय से भी वचित हो जाती है। और गेय बनी रहने के कारण वह परि-वर्तनशील जीवन की नाना वृत्तियों पर विवाद, तर्क, मन्थन और चिन्तन प्रकट करने की अपनी प्रकृत सामर्थ्य-सम्पदा भी खो देती है।

सस्कृत-साहित्य के समर्थ विधायकों एव आचार्यों ने साहित्य के सभी अगों मे नाटक को जो श्रेष्ठ माना है, उसके मूल मे भी कदाचित् उनका यही मन्तव्य रहा होगा कि प्रतिभा का उत्कृष्ट रूप प्रकट करने का जितना अवसर नाटक मे रहता है, उतना केवल एक कविता मे ही नही, किसी भी कलाकृति मे सम्भव नही है। इस निष्कर्ष मे यह बात छिपी रह गयी है कि गेय कविता के उत्कृष्ट रूप का निखिल सयोजन उन्हे नाटक मे प्राप्त हो जाता रहा है।

अपने पूर्वाचार्य्यों की ज्ञान-गरिमा के समक्ष सविधान नतशिर हो कर भी उपर्युक्त निष्कर्ष के विपरीत कहानी को जीवन के अधिक निकट मानने का एक आधार है। और वह है जीवन के साथ कला का सम्बन्ध। एक युग था, जब कला को केवल मनोरंजन का साधन माना जाता था। आज की स्थिति उससे भिन्न है। आज तो हम कला की प्राणमयता को उपयोगिता की दृष्टि से देखे बिना जीवन से ही दूर जा पडते है। अतएव विचारने की बात है कि कहानी काव्य और नाटक की अपेक्षा किस प्रकार जीवन के अधिक निकट है। कविता से हम विचार चिन्तन की उतनी आशा नही करते, जितनी उत्तरग-मानस के उद्गारात्मक उत्कर्ष की। नाटक मे निस्संदेह विचार चिन्तन का अवसर रहता है। पर जीवन जिस शान्त प्रवाह के साथ गति-शील रहता है उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति नाटक में सम्भव नहीं है। नाटक में उन घडियों के चित्रण के लिए कहाँ स्थान है, जिनमे मनुष्य के हाथ-पैर तो काम नही करते, पर उसका मानस उद्वेलित रहता है। नाटक मे प्रत्येक दृश्य क लिए एक-न-एक घटना ऐसी चाहिए, जो इस पार्थिव जगत

मे सहज सम्भव हो। मानसिक विपर्यय की वह हाहाकारमयी मूक वेदना, जो वाणी पर आ ही नही पाती—नाटक की सीमाओ मे कह आ सकती है? वह अभिनय जो सवाद की मर्मवाणी पा नही सका, नाटक की मुखर सत्ता से कहाँ तक सलग्न रह सकता है? फिर नाटक मे मनुष्य के साधारण जीवन की झाँकी के लिए कम, असाधारण जीवन की झलक के लिए निश्चित रूप से अधिक अवसर है। जीवन की क्षण-क्षण व्यापी अश्रु विगलित निःश्वास वाणी को नाटक की नाटकीयता कितनी देर सहन करेगी? नाटक तो उन्हे परिस्थितियों का दृश्यमान लेखन है, जिसका मनुष्य की कर्मधारा के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। चिन्ता-धारा के क्षेत्र मे उसकी स्थिति अभी तक नगण्य है। आज का जगत चाहे तो कह सकता है कि ऐसा मनुष्य किस काम का, जो अपना मनोभाव ही प्रकट नही करता! पर तब 'रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखौ गोप' का कवि भी ऐसे जगत के लिए किस काम का रह जायगा?

इस प्रकार कविता और नाटक, साहित्य के ये दानो अग जीवन का सम्पूर्ण मर्म प्रकट करने मे उतने समर्थ नही, जितनी कहानी। और उपन्यास का जगत तो इतना व्यापक और विस्तृत है कि उसमे हमारे क्षण-क्षण की जीवन व्यापी चिन्ताधारा ही नही, उसके निखिल कार्य-कलाप की अभिव्यक्ति हो जाती है। और जहाँ तक चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध है, कहानी की अपेक्षा उपन्यास कही अधिक समर्थ है। कहानी मे चरित्र-चित्रण के लिए अवसर भी अपेक्षाकृत कम रहता है। उसका कार्य चरित्र-सृष्टि तक ही सीमित है। चाहे सवाद हो या दृश्य का सजीव वर्णन, पत्र लिखा गया हो या वक्तव्य दिया गया हो, घर हो या सामाजिक सभा-भवन, प्लेटफ़ार्म हो या रेल की यात्रा चल रही हो, कहानी हमारे जीवन के किसी अश विशेष की झलक ही उत्पन्न करेगी। या तो किसी घटना का रहस्योद्घाटन करेगी या किसी विशिष्ट चरित्र की सृष्टि करके उसकी एक साकार गवाक्ष प्रतिमा हमारे सम्मुख उपस्थित कर देगी। किन्तु उपन्यास मे उसके जीवन भर का चढाव-उतार ऐसे रूप मे प्रकट होगा कि उसके चरित्र के क्रम-विकास का सारा इतिहास ही मुखरित हो उठेगा। इस प्रकार आकार की सीमा की दृष्टि से ही नही, उसके शिल्प-विधान की दृष्टि से

भी कहानी मे चरित्र-चित्रण के लिए उपन्यास की अपेक्षा कम अवसर रहता है।

कहानी केवल घटनात्मक नही होती, वह चरित्रात्मक और मनोवैज्ञानिक भी होती है। बात यह है कि घटनाएँ मनुष्य के जीवन मे ही नही होती, उसके मन मे भी होती है। जो व्यक्ति बोलता कम, काम अधिक करता है, उसके मन मे एक अलग दुनिया बसी रहती है। प्राय: हम देखते है कि चाभियों के जिस गुच्छे को खोजने मे एक व्यक्ति ने अभी सारे घर मे खलबली मचा रक्खी थी, वह गुच्छा उसके उसी कोट के जेब मे पडा मिलता है जो वह पहने रहता है। प्रोसफेर गुप्त ने अभी अपने छोटे भाई से दवात माँगी थी, पर जब वह उनके पास दवात लेकर पहुँचाता है, तो वे कहते है कि मैंने तो गोंद की बॉटल माँगी थी। मुंशी रामप्रसाद के पास आज एक लिफाफा डेड-लेटर आफिस से लौटकर आया है। उसके अन्दर जो पत्र है, वह उन्ही के हाथ का लिखा हुआ है। लिफाफे के ऊपर उनका नाम और पता भी लिखा हुआ है। फिर भी आश्चर्य है कि वह उन्ही के पास कैसे लौट आया। उलट-पुलट कर उसे ध्यान से देखते है तब पता की ओर जो उनकी दृष्टि जाती है तो यह देख कर अवाक् रह जाते है कि जिन बन्धु को उन्होंने यह पत्र भेजा था, पते पर नाममात्र केवल उनका है। शेष भाग की पूर्ति मे उन्होंने स्वयम् अपने घर का पता लिख दिया है!

इस उदाहरण से यह स्पष्ट विदित होता है कि मनुष्य के बाहर के जगत् से उसके भीतर का जगत् सर्वथा भिन्न है। और इसी भिन्नता को प्रकट कर देना मनोविश्लेषण का मुख्य धर्म है।

[ २ ]

कहानी-कला के तत्वदर्शी, उसके शिल्पविधान के समीक्षक, इस विषय में प्राय: एक मत है कि हिन्दी कहानी के आधुनिक स्वरूप पर अँगरजी फ्रेंच तथा रूसी कहानियों का व्यापक प्रभाव पडा है। परन्तु यह बात कितनी विचित्र और मनोरंजक है कि कथा-साहित्य का मुख्य जनक हमारा देश भारतवर्ष ही है; और आधुनिक सभ्यता के मूल स्वर की दृष्टि से उसका सब से अधिक गरिमामय इतिहास कथा-साहित्य का ही है।

लगभग बीस वर्ष पूर्व की वात है कि आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक पत्र मे, इस विषय पर एक बहुत गवेषणापूर्ण लेख लिखा था। उसके अनुसार मिस्टर वेनफी ने, जो साहित्य के ऐतिहासिक शोध मे अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते है, सारे ससार की कहानियों की आधार-भूमि भारत-वर्ष को ही माना है... । मिस्टर विण्टरनित्स ने अपने 'सम प्राबलेम्स आँव इण्डियन लिट्रेचर' मे लिखा है कि 'पचतंत्र' संसार के साहित्य का सब से अधिक मनोमोहक अध्ययन है। और मिस्टर वुल्फ ने 'पचतत्र' के अरबी भाषा के अनुवाद को जर्मन भाषा मे अनुवादित करते हुए लिखा है कि संसार की सर्वाधिक भाषाओ के अनुवादित साहित्य में वाईविल के बाद 'पचतत्र' का ही स्थान है।

इस प्रकार स्थिति यह है कि हम कहते है कि हमने उनसे सीखा और वे कहते है कि हमने आप से पाया। अब प्रश्न यह है कि इन दोनों कथनों का मूल आधार क्या है और साथ ही इस बात पर भी ध्यान देने की आवश्यकता हैं कि 'पंचतत्र' को जो इतना और गौरव मिला, उसमे प्रचार काल की स्थिति क्या थी।

द्विवेदीजी ने इस विषय में भी कुछ तथ्यपूर्ण प्रामाणिक बाते कही हैं। उनके मत से 'पंचतंत्र' का रचना-काल अभी तक निश्चित नहीं हुआ, परन्तु इसका सबसे पहला अनुवाद पहलवी भाषा मे बादशाह नौशेरवाँ (सन् ५३१–५७९) ने हकीम वर्जो से करवाया था। तदनन्तर ५७० ई० में सीरियन भाषा मे इसका अनुवाद हुआ। इसके पश्चात् अरबी, जर्मन भाषाओं के साथ-साथ चेखोस्लोवाकिया, ग्रीक, इटली आदि सभी पाश्चात्य देशों की भाषाओं में इसके अनुवाद हुए। बारहवी शताब्दी में रोबीजोएल ने इसका अनुवाद हिब्रू भाषा मे किया। तदनन्तर हिब्रू भाषा के अनुवाद से लैटिन भाषा मे जो अनुवाद हुआ, वही कालान्तर में सब से अधिक लोकप्रिय माना गया।

यह बात कम आश्चर्य की नही है कि इस अवधि में 'पंचतत्र का ऐसा विश्वव्यापी प्रचार हो गया! जिस युग मे साहित्य के प्रचार के साधन आज की अपेक्षा बहुत सीमित थे, अकेले इसी ग्रन्थ का इतना समादर और प्रचार कैसे हो गया! कहना न होगा, पश्चिम और पूर्व की सभ्यता और सस्कृति में

आकाश और पाताल का अन्तर है, फिर भी उन देशो ने इस ग्रन्थ को इतना गौरव क्यो प्रदान किया, जो प्राच्य आदर्शों से दूर ही दूर रहते हे और उन्हें असाधारण अव्यावहारिक और मानव-जगत के लिए एक अद्भुत चमत्कार के रूप में देखते है। ध्यान से देखने और विचार करने पर, अन्त मे, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है, जो साहित्य अखिल जगत और उसमे फूलीफली मानवता को सार्वभौमिक और सर्वकालीन—अपेक्षाकृत सर्वव्यापक—विचार, दृष्टि और प्रेरणा देता है, उसकी सुधा-धारा सतत प्रवाहिनी और नवनवोन्मेषिणी होती है। जाति और समाजगत भेदाभेद उसके लिए क्षणस्थायी रहते है । वह सामूहिक रूप से एक ही प्रकार के आनन्दसन्दीपन से समस्त विश्व और प्रकृति को अनुप्राणित करता रहता है। जिस प्रकार की वेदना से प्राच्य व्यक्ति व्यथित, उन्मन, व्याकुल, सन्तप्त और पीडित रहता है, उसी प्रकार की वेदना से पाश्चात्य व्यक्ति ! जैसे सुख-दुःख, राग-विराग, ईर्ष्या-द्वेष, सम्पर्क, आकर्षण और मिलन प्राच्य मानस को प्रभावित करते है, वैसे ही पाश्चात्य मानस को। तात्पर्य यह कि एक ही प्रकार की चिन्ताधारा समस्त मानव प्रकृति के मानसिक स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व करती रहती हे। देश और काल, युग-परिवर्तन के प्रभावों मे कोई व्यापक और मौलिक भेद नही उत्पन्न कर पाते। जो भेदाभेद कभी झलकते भी है, ध्यान से देखा जाय, तो वे क्षणस्थायी, कृत्रिम, आरोपित और मिथ्या होते है ।

सस्कृत-साहित्य के रीति-ग्रन्थों मे अग्निपुराण का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उसमें कथा के जो लक्षण दिये गये है, उनमे कहानी के शिल्प विधान का एक परम्परागत आभास तो मिलता ही है; साथ ही उसके क्रम-विकास पर भी पर्याप्त प्रकाश पड जाता है। उसके अनुसार कथा मे लेखक के वश का स्तवन और उसकी घटना कन्याहरण, युद्ध और विप्रलम्भ आदि विपत्तियों से युक्त होनी चाहिए।

कहा जाता है कि आज का युग मुख्य रूप से ज्ञान विज्ञान का युग है, और साहित्य की उपयोगिता की दृष्टि से यह गद्य का युग है। किन्तु भारतीय साहित्य का आदिकाल पद्यमय रहा है। कहना न होगा, वेदों की ऋचाएं पद्य मे हैं। ऋच शब्द का अर्थ ही पद्य है। इसी कारण कहानी का जन्म संस्कृत-साहित्य में पहले पहल पद्य मे हुआ। यद्यपि ऐसा नहीं है, वैदिक

साहित्य मे गद्य का अभाव रहा हो। तत्कालीन ब्राह्मण ग्रन्थ पद्य मे ही लिखे गये है। कादम्बरी गद्य-साहित्य के उत्कर्ष की पताका आज भी फहरा रही है।

ऊपर अग्नि-पुराण मे आख्यायिका के जो लक्षण दिए गए है, उनका सम्बन्ध प्रबन्ध काव्यों मे निहित आख्यायिकाओं के गुणों के साथ विशेष और निकटतम जान पडता है। आख्यायिका मे लेखक के वश का स्तवन उस परम्परा को व्यक्त करता है, जिसमे प्रबन्ध काव्यों के आदि में कवि अपने आश्रयदाता राजन्य वर्ग का स्तवन करने के साथ-साथ अपने वश का उल्लेख करने मे कोई सकोच नही करता था। यह परिपाटी किसी न किसी रूप में आज भी विद्यमान है। आज का लेखक भी, हम देखते है, साहित्य ग्रन्थों के समर्पण मे कृतज्ञताज्ञापन तथा भूमिका मे अपने सम्बन्ध की बात, अपने जीवन की बात, अपने साहित्य की देन मे, अपने पूर्वजों के गुण, प्रकृति, स्वभाव का उल्लेख बडे गर्व के साथ करता है। केवल शैली, दिशा और प्रकार बदल गया है। अपने आश्रयदाता के साथ-साथ प्रकारान्तर से अपना और अपने अहम् का उल्लेख किसी न किसी रूप मे आज भी प्रचलित है।

अग्नि पुराण के अनुसार यद्यपि आज का आख्यायिका लेखक अपने वश का स्तवन नही करता, किन्तु यह तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अपनी मान्यताओं के स्तवन के साथ दुर्बलताओं का मनोहर निरूपण स्वनिर्मित प्रसंगों के द्वारा उसकी कथाओं में निश्चित रूप से रहता है। यह स्थल आज की कथाओं के उदाहरण दे-देकर उनके लेखकों के अहवाद की मर्मवाणी व्यक्त करने का नही है। वहाँ हम केवल यही कहना चाहते है कि अग्नि पुराण मे, कथा के लक्षणों में, लेखक के वश के स्तवन का जो उल्लेख किया गया है, उसका क्रमागत सम्बन्ध हम आज भी कथा-साहित्य मे स्पष्ट रूप से देख सकते है।

अब हमे देखना यह है कि अग्निपुराण के अनुसार कथा के शेष लक्षण आधुनिक कहानी मे किस धरातल, स्तर और विकास के साथ विद्यमान है।

प्राचीन काव्यो में युद्ध-वर्णन की जो प्रधानता है, उसका साहित्य के मूल उपादानों के साथ बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। पशुबल के साथ बुद्धिबल का, सत्य और न्याय पक्ष के साथ असत्य, अन्याय और दुराग्रह पक्ष का, भौतिक स्वार्थों के साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष किंवा परमार्थ का, साधु

और तपस्वियों के साथ दुष्टों और धूर्तों का; इसी प्रकार देवताओं के साथ राक्षसों का सम्पर्क, सम्बन्ध, संघर्ष, शक्ति परीक्षण और युद्ध जैसे हमारी सभ्यता के इतिहास के विकास का एक अनिवार्य विषय है, वैसे ही वह कथा साहित्य के क्रम-विकास का भी एक आधारभूत अग है। कदाचित् इसीलिए प्रवन्ध काव्यों के ऐतिहासिक आधारो के सिवा मनुष्य के साधारण जीवन में भी युद्ध का स्थान—सामाजिक विषमता तथा मनोगत अन्तर्द्वन्द्व के रूप मे—सर्वथा निश्चित और एक चिरन्तन सत्य बन गया है।

परन्तु अग्नि-पुराण में जिस प्रकार के युद्ध को कथा का एक गुण माना गया, राजनीतिक प्रभावों के साथ अक्षुण्ण होने के कारण कथा-साहित्य मे वह बहुत सीमित रह गया है। उसका स्थायी और व्यापक नाता तो मनुष्य के मन मे निरन्तर चलनेवाले युद्ध और अन्तर्मन मे निहित जीवन मे व्यापक रूप से फैले अन्तर्द्वन्द्व से है।

अग्नि पुराण के अनुसार कहानी का दूसरा गुण है विवाह मे कन्याहरण की विपत्तिजनक घटना। यह मान्यता सामन्त युग की देन जान पड़ती है। सुभद्राहरण, सयोगिताहरण जैसी घटनाए पुरुषार्थ की दृष्टि से विशेष महत्त्व की मानी जाती थी। पर, न केवल राजन्यवर्ग मे वरन् आज की सभ्यता के अनुरूप विकसित समाज मे भी इस प्रकार का नारीहरण आज सम्भव नही है। हाँ, इस स्थल पर यह अवश्य विचारणीय है कि जैसे उस समय की कथाओं मे कन्याहरण को नायक की वीरता का एक विशेष अग माना गया, वैसे ही आज प्रेम-कथाओं में भी उन परिस्थितियों के लिए एक निश्चित स्थान बन गया जो पहले तो वैवाहिक प्रसंगों, सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों और अन्ध परम्पराओं द्वारा एक महाविपत्ति खड़ी कर देती है, पर अन्त मे कोई ऐसी घटना या परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है कि विपत्ति के बादल अनायास टूट जाते है। भाग्यवादी लेखको के हाथ में यदि कहीं इस प्रकार की घटनाएँ जा पड़ती है, तो वह नायक की विफलता मे एक ऐसे हाहाकारपूर्ण असहनीय दारुण दुख-सागर का चित्र अंकित कर देता है कि पाठक का हृदय सहसा कम्पित हो उठता है। वह विचारा सोचता रह जाता है कि दुःखों का भोग जीवन का एक निश्चित चिरन्तन सत्य है। असफलता जीवन मे अवश्यम्भावी है और विपत्ति के आकस्मिक हस्तक्षेप और विरोध

के आगे व्यक्ति का सारा प्रयत्न, उद्योग और पुरुषार्थ सर्वथा असहाय, हीन और व्यर्थ है।

यहाँ कन्याहरण तथा विवाह-सम्बन्धी घटनाओं के साथ 'विपत्ति' शब्द का योग भी कम विचारणीय नही है। काव्य हो चाहे नाटक अन्त मे विजय, सफलता और एक चिरस्थायी सुख-शान्ति की स्थापना भारतीय वाग्मय का एक स्थायी आदर्श तथा गुण रहा है। मनुष्य का जीवन सुखमय हो, इसी एक महान उद्देश्य के साथ, उसमे समस्त कलाओ का निरूपण किया गया है। भगवान राम चौदह वर्ष तक वनवास करते है। यह प्रसंग चाहे जितना दुखद हो, किन्तु अन्त मे वे लौटते और अयोध्या में शान्तिपूर्वक राज्य भी करते है। तपस्वियों की साधना मे विघ्न डालनेवाले चरित्रों के साथ राम लोहा लेते है। रावण छल-प्रपंच के साथ सीता को हरण कर लाता है, किन्तु अन्त मे दैत्य वश का सहार होकर रहता है। दुर्योधन राज्य-भोग के प्रति एक लोलुप दृष्टि रखता है। ऐश्वर्य के प्रति उसे बडा मोह है। वह राग-द्वेष की मूर्ति है। प्रतिहिंसा की मात्रा भी उसमे अधिक है। उदात्त विनोद को तत्काल हृदयंगम कर उसका उचित समादर करने की उच्च सभ्यता का भी उसमे अभाव है। इसके विपरीत युधिष्ठिर मन, बचन और कर्म की एकता मे एकरस, स्वाभाविक रूप से उदार, कष्ट-सहिष्णु और धर्मपरायण है। अधिकार स्थापन और कर्म निरूपण के नाम पर युद्ध होता है। इतना भयानक और विनाशकारी युद्ध कि काल की लघुतम सीमा की दृष्टि से देखा जाय, तो अठारह दिनों की अल्प अवधि मे इतना व्यापक महायुद्ध आज के इस वैज्ञानिक युग मे कम देखने सुनने को मिलता है। एटम बम के प्रयोग अथवा किसी एक पक्ष पर प्रलयकर आक्रमण की बात दूसरी है। तात्पर्य यह कि महाभारत जैसे युद्ध हुए, पर उसका अन्त न्याय के पक्ष में ही हुआ। केवल इसलिए कि सत्य और न्याय—मानवात्मा की आदर्श सुख शान्ति इन्ही दो आधारों पर टिक सकती है।

किन्तु यह विपत्ति क्यों आती है? फिर वह अन्य अवसरों पर भले ही आये, पर यह क्या है कि वह विवाह जैसे आनन्द-महोत्सव के समय आये! क्योंकि वह नित्य और निश्चित है। मनुष्य के जीवन मे यदि कभी विपत्ति न आये, तो जीवन की निखिल महत्ता ही मूक और बधिर हो जाय मनुष्य

के जीवन में यदि दु:ख न हों, तो सुख-साफल्य की मन्द मन्द शान्त प्रवाह-मयी मन्दाकिनी ही सूख सूखकर एकसैकत राजमार्ग बनकर रह जाय ! इसीलिए विपत्ति निश्चित है। जीवन को उससे मुक्ति कैसे मिल सकती है! जीवन को समझने के लिए उसकी अपनी उपयोगिता भी तो है।

इस स्थल पर एक कथा-प्रसंग का स्मरण आ रहा है। लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व लायोन्स नगर मे, एक जगह पर, एक भोज दिया गया। उसमें बड़े धनी-मानी व्यक्ति सम्मिलित हुए। वार्तालाप के सिलसिले में पौराणिक कथाओं के चित्रों के सम्बन्ध मे विवाद छिड़ गया। अतिथियों में जब यह विवाद शिष्टता और संयम का अतिरेक करने लगा, तो गृहस्वामी ने अपने एक भृत्य को बुलाया और उस चित्र के विषय मे समझाने का आदेश किया। भृत्य ने स्पष्ट, सक्षिप्त, सरल और विश्वसनीय भाषा में उन चित्रो का मर्म समझा दिया। उसका उत्तर सुनकर सब लोग आश्चर्य से चकित हो उठे और सारे विवाद का अनायास अन्त हो गया।

उसी समय एक अतिथि ने उस भृत्य के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए पूछा—"महाशय, मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने किस स्कूल मे शिक्षा प्राप्त की है ?"

नवयुवक भृत्य ने उत्तर दिया—"यों तो मैंने कई स्कूलों में शिक्षा पायी है। परन्तु 'विपत्ति' के स्कूल में मैंने अध्ययन करने में सबसे अधिक समय व्यतीत किया है!"

यह नवयुवक भृत्य उस समय का एक अत्यन्त दीन-हीन किन्तु क्रान्तिकारी लेखक जीन जेक रूसो था।

इस प्रकार अग्नि पुराण मे कथा के उपर्युक्त लक्षण मे 'विपत्ति' शब्द अपने स्थान पर बड़ा महत्त्व रखता है। आज की कहानी के मूल स्वर के साथ उसका अटूट सम्बन्ध है। विपत्ति का स्कूल ही कहानी का वास्तविक स्कूल है।

[ ३ ]

कहानी को हम कई अंशों में और कई प्रकार से विभाजित कर सकते है। सब से सरल विभाजन है किसी भी क्रिया की भाँति—प्रारम्भ, मध्य और अन्त। इसी को हम जन्म, विकास और परमगति भी कह सकते हैं।

पहले प्रारम्भ को लीजिए। कहानी का प्रारम्भिक गुण है उत्सुकता।

अर्थात् उसका प्रारम्भ ऐसे ढंग से होना चाहिए कि उसका साधारण धर्म, स्वाभाविकता और सप्राणता उसमे सर्वथा सुरक्षित हो। ऐसा न प्रतीत हो कि हम कोई (कृत्रिम) कहानी पढ रहे हैं। वरन् कुछ ऐसा प्रतीत हो कि अवश्य ही ऐसी घटना कही हुई है। कही ऐसा सन्देह भी न हो कि इसके अन्दर जिन लोगों की बात चल रही है, वे इस जगत के नहीं है। मन में कही यह शका भी न उपस्थित हो कि समाज में ऐसे व्यक्ति तो कही दिखाई नही देते।

प्राय: नये लेखक कहा करते है कि कहानी मैं लिखना तो चाहता हूँ, पर यही मेरी समझ मे नही आता कि उसे आरम्भ कैसे करूं। वे इतना भी नही सोचते कि कहानी को किसी भी परिस्थिति से प्रारम्भ किया जा सकता है। यथा—

आज जब मेरी आँख खुली तो क्या देखता हूँ कि सामने वाले मकान की छत की मुडेर पर कबूतर बैठा हुआ गुटुर गूँ कर रहा है।

अब आइए मध्य में। कहानी का मध्य उसकी विकसित अवस्था का द्योतक है। और सब से सुन्दर कहानी वह होती है जिसकी घटना अथवा समस्या में एक प्रकार का संशय और असमजस रहता है। उसकी दुविधा में इतनी त्वरा रहती है कि पाठक कहानी पूर्ण होने से पूर्व ही परिणाम जानने के लिए अधीर हो उठता है; किन्तु कथा के मध्य मे कहीं कोई ऐसा संकेत भी नही रहता कि अन्तिम परिणति के पूर्व कही भी उसका भेद खुल सके।

कहानी के अन्त की स्थिति सब से अधिक सुकुमार होती है। प्राय: बडे प्रतिष्ठित लेखक सुन्दर-से-सुन्दर कहानी का अन्त करने में गड़बड़ा जाते हैं। बात यह है कि मनुष्य जैसे अन्त के क्षण परम गति को प्राप्त होता है, वैसे कहानी का अन्त उसके अन्तराल मे निहित एक ऐसा मर्म स्वर होता हैं जो इसी अवसर के लिए सुरक्षित रहता है उससे पूर्व सर्वथा प्रच्छन्न रखा जाता है। वह ऐसे विस्मय के साथ फूट पडता है कि पाठक वाह-वाह कह उठता है! कहानी यदि घटनात्मक होती है, तो पाठक का हृदय इस अखिल सृष्टि और प्रकृति मे निहित नियति के कठोर व्यग्य से यकायक तिलमिला उठता है। वह मन-ही-मन इस जगत मे चतुर्दिक व्याप्त एक रहस्य का अनुभव करने लगता है, मानो अब तक वह उससे सर्वथा अपरिचित और अनभिज्ञ बना रहा है। इस प्रकार के अन्त का परिणाम प्राय: ऐसा भी होता

है कि वह भविष्य के सर्वथा अनिश्चित फलाफल को भोगने के लिए पहले से कही अधिक सावधान और सतर्क हो उठता है ।

दूसरे ढँग से हम कहानी को—कथानक, पात्र और दृश्य—इन तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं।

कथानक को वस्तु तथा वृत्त के अतिरिक्त अँगरेजी मे प्लाट कहते हैं, कोई भी अप्रत्याशित क्रिया, चाहे वह मन की दुनिया में हो, चाहे भौतिक जगत् मे, यदि मनोवेगों और समवेदनाओ का स्पर्श करके पाठक के मन मे परम हार्दिकता के साथ स्पन्दन और एक प्रकार की मधुरता तथा रुचिरता उत्पन्न कर दे, चाहे वह आश्चर्य्यजनक या आह्लाद पूर्ण हो, चाहे आघात-मूलक, घटना होती है। इसी घटना की परिस्थिति का दूसरा नाम कथानक है। उसकी संयोजना के मूलाधारों का नाम पात्र और उसकी रूपात्मक गतिविधि और कार्य-कलाप का नाम दृश्य है। कहानी के प्राण को हम कथानक, कर्मेन्द्रियो को पात्र और उनके शरीर को दृश्य कह सकते है।

बहुधा हम देखते हैं कि जिस कहानी में कथानक नहीं होता, वह निष्प्राण होती है। और जैसे इन्द्रियों के बिना भी कोई क्रिया सम्भव नही। पात्रों के बिना कोई खेल हो नही सकता, इसी प्रकार प्रत्येक क्रिया की रूपात्मक सत्ता सदा एक न एक दृश्य उपस्थित करती रहती है। प्राण और इन्द्रियों का अस्तित्व शरीर के बिना सम्भव नही, क्योंकि प्राण और इन्द्रियां अन्ततोगत्वा शरीर मे ही विलय होती हैं, वैसे ही परिस्थितियाँ और पात्रों का अस्तित्व दृश्य के बिना सम्भव नही। इस प्रकार कथानक, पात्र और दृश्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक के बिना अन्य दोनों व्यर्थ हो जाते हैं।

कथानक चार प्रकार के होते है—घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, भाव प्रधान और वर्णनात्मक। जासूसी कहानियों की गणना घटना प्रधान कहानी में की जाती है। चरित्र प्रधान कहानी में चरित्र के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाता है। भाव प्रधान कहानी में घटना और चरित्र पर उतना ध्यान नही दिया जाता, जितना भावुकता पर। उसमे यदि कोई घटना भी होती है, तो उसकी परिणति भावुकता से होती है। वर्णनात्मक कहानी मे वर्णन की चारुता की ऐतिहासिकता पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है।

इस प्रसंग मे इतना और स्पष्ट कर देना आवश्यक हो गया है कि घटना-मूलक कहानी के सारे कार्य पात्रों की इन्द्रियां करती हैं। या तो उनके हाथ-पैर काम करते हैं, या वे वार्त्ता से काम लेते हैं। किन्तु भावात्मक तथा चरित्रा-त्मक कहानियो के अधिकांश कार्य-कलाप मन-सम्बन्धी होते है। मानसिक उद्वेलन और मानसिक-विपर्यय ही उनका मूल स्वर होता है। ऐसी कहानियां मनोविश्लेषण पद्धति द्वारा लिखी जाती है।

यों तो जीवन की प्रत्येक भौतिक क्रिया दृश्यात्मक होती है। किन्तु कहानी मे दृश्य की जो सत्ता है, उसका एक विशेष अभिप्राय है। बात यह है कि एक व्यक्ति जब दूसरे से मिलता है, तब उससे कुछ-न-कुछ अवश्य कहता है। इन कथनों में जो विचार-विनिमय होता है, उसे कहानी की भाषा में कथोपकथन कहते है। कथोपकथन-विहीन दृश्य मूक होते है। यों मूक दृश्यों की कहानी भी हो सकती है, पर वह केवल वर्णनात्मक होगी। उसमे या तो कार्यकलाप की चर्चा रहेगी, या सम्बन्धित पात्रों के मत का भेद बतलाया जायगा। पर इस प्रकार के दृश्यों में नाटकीय परिस्थिति का सर्वथा अभाव रहेगा और जिन कहानियों मे नाटकीय परिस्थिति का अभाव होता है, उनमें जीवन का कोई भी मनोवेग चरम परिणति तक नहीं पहुंच पाता और कहानी सफलता के चरम विन्दु को प्राप्त करने से वंचित हो जाती है।

कहानी के शिल्प-विधान की चर्चा के समय, हमे एक बात नही भूलनी चाहिये। वह यह कि कहानियों का जन्म पहले हुआ है, उसके शिल्प-विधान की रचनात्मक व्याख्या उसके बाद। अर्थात् कहानी के शिल्प-विधानों को मूलरूप से कहानी ने ही जन्म दिया है। यह बात दूसरी है कि आज शिल्प-विधानों का कहानी-लेखन पर नियन्त्रण चलने लगा है।

यहां इस कथन का अभिप्राय कथाकार की उस प्रतिभा को स्मरण और स्वीकार करना है, जिसकी रचना से कथा के शिल्प-विधान में निरन्तर विकास होता रहता है। रचना का मुख्य गुण शैली है। शैली से ही मनुष्य का व्यक्तित्व प्रकट होता है। इसीलिए शैली को मनुष्य का प्रतिरूप माना गया है।* शैली वास्तव में उन गुणों का नाम है, जो किसी रचना, शिल्प

*'स्टायल इज़ दी मैन।'

और व्यक्ति को, उसके विशिष्ट गुण, कर्म और स्वभाव के कारण उसे पूर्व-कालीन वर्ग, जाति और श्रेणी से पृथक, मौलिक और श्रेष्ठ बनाती है। शैली प्रतिभा की वह झलक है, जो किसी रचनाकार को साधारण कोटि से उठाकर असाधारण कोटि में लाकर उसे खडा कर देती है। शैली नवनव कल्पनाओं के भीतर से उठने और जन्म लेने वाले उस मूर्त प्रयोग का नाम है जो जीवन के हर क्षेत्र में सफलता के साथ नेतृत्व करता है।

शैली की दृष्टि से यदि हम कहानियों का विभाजन करें, तो वह इस प्रकार होगा—

१. वर्णनात्मक
२. कथोपकथन प्रधान
३. आत्मकथन प्रधान
४. डायरी प्रधान
५. पत्र प्रधान

वर्णनात्मक शैली मे घटना तथा परिस्थिति का सारा वृत्तान्त इतिहास की भाति वर्णन कर दिया जाता है। यह वर्णन जितना सजीव और चित्रात्मक होता है, उतना ही रोचक बन जाता है। पहले पहल इसी शैली पर अधिकांश कहानियाॅ लिखी जाती थी, पर इसका अधिक उपयोग अब कहानी की अपेक्षा उपन्यास में अधिक होता है। वातावरण का सजीव इसी शैली पर आधारित रहता है। भाषा सरल हो और वाक्य बहुत बडे न हों, भावों में मर्म-स्पर्श की क्षमता और विनोद की झलक हो तो इस शैली की कहानियों मे बड़ा प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है।

कथोपकथन कहानी का मूल स्वर होता है। एक विज्ञ का कथन है कि कहानी सुन्दर चाहे जितनी हो, पर कथोपकथन के बिना गूंगी रहती है। कथोपकथन पात्रों के व्यक्तित्व और उनकी सस्कृति के अनुरूप रहना चाहिये। क्योंकि सभी आदमी एक ही प्रकार से नहीं बोलते, सबकी भाषा भी एक सी नहीं होती।

आत्म-कथन प्रधान शैली में हार्दिकता की प्रधानता रहती है। उसमें सजीवता स्वाभाविक रूप से स्वत. बढ जाती है। पाठक के मन से यह बात हटाये नही हटती कि लेखक मानो अपना ही जीवनचरित लिख रहा है।

यही इस शैली का सबसे बड़ा गुण है; और यही इसकी सबसे बडी दुर्बलता भी। बात यह है कि हार्दिकता के कारण जहा इस शैली की कहानी अपेक्षाकृत अधिक सजीव हो जाती है, वहा प्रायः ऐसा भी होता है कि भिन्न प्रकार का चरित्र-निर्वाह करते-करते लेखक अनायास अपनी प्रवृत्ति, अपना स्वभाव और अपनी रुचियों की झलक डालकर चरित्र-चित्रण की एकनिष्ठ सफलता के लिए हानिकर और अविश्वसनीय बन जाता है।

डायरी प्रणाली से लिखी जाने वाली कहानियाँ रोचकता की दृष्टि से आत्मकथा शैली का प्रभाव पा जाती है। इस प्रकार की कहानियों मे बहुधा उसी नायक के जीवन की झलक मिलती है, जो या तो इस जगत से विदा ले चुकता है, या इस संसार के सामाजिक सघर्ष से ही अपने आपको दूर फेक देता है। जिस कथा को उसे कर्म की लकीरो से लिखना चाहिये उसे वह कागज पर उतार कर संतोष कर लेता है। इस शैली में वही कहानियाँ अधिक सफल होती हैं; जिनका अन्त दुःखमय होता है। इसकी सुखान्त कहानियाँ बहुधा निर्जीव और हलकी होती है। डायरी के अपने विशिष्ट लक्षणों के निर्वाह मे यदि वे सफल भी हुई, तो वे घटनाओ की संयोजना में गडबडाकर अपना प्रभाव खो बैठती हैं।

पत्र-शैली की कहानी मे एक तो दृश्यात्मक गुणो का अभाव रहता है; दूसरे नाटकीय प्रभाव भी उसमें उतनी रुचिरता से नही आता, जितना वर्णनात्मक और कथोपकथन की मिश्रित शैली वाली कहानी में। विश्व-साहित्य मे आज जो कहानियाँ अमर मानी जाती है, वे प्रायः इसी मिश्रित शैली की देन है।

विषय की दृष्टि से अब तक निम्न प्रकार की कहानिया लिखी गई हैं

१ प्रेम-कहानियाँ
२. ऐतिहासिक कहानियाँ
३ जासूसी कहानियाँ
४. जीवन-रहस्य पर प्रकाश फेकने वाली, आश्चर्य्य कहानियाँ
५. व्यंग तथा हास्य कहानियाँ
६. आदर्श कहानियाँ
७ मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

कहानी का मूलस्वर प्रेम है। प्रेम पर किसी का हस्तक्षेप और नियन्त्रण नही चलता। प्रेम की महत्ता प्राणों के मूल्य से भी तोली नही जा सकती। इसीलिए लोग प्राण देकर भी प्रेम की रक्षा करते है। प्रेम एक ईश्वरीय देन है, वह सब को नही मिलता। विरले ही इस अमृतपान का अवसर पाते है। प्रेम बडा ज़िद्दी और निष्ठुर भी होता है। क्षमा, दया और उदारता, सहानुभूति और शिष्टाचार उसे स्पर्श नही कर पाते। वह क्रय-विक्रय की सीमाओं से परे रहता है। वह कलाकार ब्रह्म का एक सर्वव्यापक रूप है। कोई प्राणी उससे वंचित नही रहता। वासना से मिलने मे उसे आपत्ति नही, पर वह उसके साथ रह नही सकता। वह देखता सबको है, पर उसके आँखे नही होती। उसके अनेक मार्ग है, अनेक रूप और स्वर है। उसको अँगुली भी पकडने को मिल जाय, तो वह ईश्वर से मिला सकता है। विश्व के कहानी साहित्य से यदि प्रेम कहानियाँ पृथक् कर दी जॉय, तो जो कुछ शेष रह जायगा, वह एक प्रकार से निष्प्राण होगा। इसीलिए सभी सम्मुन्नत भाषाओं मे आज प्रेम कहानियों की धूम है।

ऐतिहासिक कहानियों का मुख्य सम्बन्ध काल से रहता है। किसी भी समय और किसी भी विषय की कहानी युग-परिवर्तन के पश्चात् कालान्तर में ऐतिहासिक बन जाती है।

जासूसी कहानी का विषय उसके नाम से ही प्रकट है। हत्याओ, अग्नि काडों, चोरियो, विविध अपराध जन्य स्थितियों तथा दुर्घटनाओं में जिन लोगों का प्रमुख हाथ रहता है, उनकी खोज और छानबीन ही इन कहानियों का उद्देश्य है।

विश्व के कथा-साहित्य मे प्रेम कहानियो के बाद जिन कहानियों की गणना अधिक की जाती है, वे जीवन-रहस्य की आश्चर्य्य कहानियाँ होती हैं। जगत मे नाना प्रकार के व्यक्ति है। रूप, आकार-प्रकार, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से यो भी उनमें परस्पर बडा अन्तर होता है, फिर गुण, कर्म और स्वभाव को लेकर उनकी भिन्नता और भी बढ जाती है। इतने पर भी मनुष्य सामाजिक प्राणी है। एक का दूसरे के साथ मिलना जुलना जीवन व्यापारों में सहयोग करना, पारस्परिक विश्वास, एक का दूसरे पर निर्भर रहना आदि ऐसी वृत्तियाँ है, जो मनुष्य के लिए सर्वथा स्वाभाविक है। उसकी

बाद स्वार्थ-साधन, आडम्बर, भ्रम-जाल, षडयत्र के पडोस मे चुपचाप बैठी नि:श्वास भरती सहृदयता, उदारता, क्षमा दया और नाना प्रकार की प्रतिक्रियाओं मे विजडित सत्रस्त क्षिप्त आज का सामाजिक व्यक्ति—मन, वचन और कर्म की एकता में कहां जा पहुंचा है, इन्हीं बातों, विषयों, उलझनों और समस्याओं का निरूपण इस प्रकार की कहानियो का मुख्य क्षेत्र होता है।

व्यंग्य तथा हास्य की कहानियो का, जीवन और समाज के नव-निर्माण और विकास मे बडा हाथ रहता है। शरीर उनका मनोरजक अवश्य होता है, पर उसके भीतर समाज की आलोचना की जो एक सजग भूमिका रहती है, वह कड्वी औषध की भाँति तीखी, तीव्र और कटु होती है। रचनाकार चाहे तो ऐसी कथाओं द्वारा समाज का मानसिक ताप दूर करके उसका बडा उपकार कर सकता है। पर इस प्रकार की कहानियों में दो बातों का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है।

१ वे अश्लील और यौन-परक न होनी चाहिये।

२ व्यक्तिगत-आक्षेप से उन्हे सदा दूर रखना चाहियें।

आदर्श कहानियों से यहां अभिप्राय उन कहानियों से है, जिनके भीतर से किसी नीति, सिद्धान्त और आदर्श विशेष की मन्द मन्द गन्धवाय नि सृत होती रहती है। ऐसी कहानियाँ उद्देश्य मलक होती है। व्यक्ति और समाज की साधारण भूलों, अन्ध परम्पराओं, [illegible], रूढियों तथा जीवन में फैले क्रोध, मोह, अहकार के विष से पाठक को सजग करते रहना इन कहानियों का मुख्य लक्ष्य होता ह

ये कहानियाँ स्थूल रूप से दो प्रकार की जान पड़ती है—आदर्शवादी और यथार्थवादी। किन्तु मूलत: वे आदर्शवादी ही होती है। अन्तर उनमें केवल शैली का रहता है। आदर्शवादी कहानियों में व्यक्ति और समाज की आलोचना परिष्कृत, शिष्ट और सुधारवादी दृष्टि से होती है, पर यथार्थवादी कहानियों मे शिष्टता का उतना ध्यान नही रक्खा जाता, जितना तीव्रता का। वे अपेक्षाकृत कटु भी होती हैं। लेखक उनकी रचना मे क्षण स्थायी सुधार का स्वर न देकर क्रान्ति का शंखनाद देता है। वह इस प्रकार की औषधि पर विश्वास नहीं करता, जो प्रकट रूप से, थोडे दिनों के लिए रोगी को नीरोग रखती है, पर उसके पश्चात् उसके लिये परम धाम का टिकट काट देती है!

यहां यह स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि एक सच्चा कर्मठ और सफल यथार्थवादी पक्का आदर्शवादी होता है। हिन्दी जगत मे यथार्थवाद के सम्बन्ध में एक बडा भ्रम फैला हुआ है। लोग यथार्थवाद को आदशवाद से सर्वथा पृथक् मान बैठे हैं। पर ध्यान से देखा जाय, तो यथार्थवाद आदर्शवाद का ही एक रूप है। बात यह है कि जैसे यथार्थ का एक आदर्श होता है, वैसे ही आदर्श की एक यथार्थता होती है। यथार्थ की ओर इगित किये बिना आदर्श अपनी रक्षा तक नहीं कर सकता और एक आदर्श को लक्ष्य-विन्दु माने बिना यथार्थ की स्थिति ही डांवाडोल रहती है। सच पूछिये तो दोनो एक ही राज-पथ के पृथक्-पृथक् दो फुटपाथ हैं।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ केवल एक विशिष्ट शैली के कारण अपना पृथक् अस्तित्व रखती हैं; अन्यथा साधारण रूप से प्रत्येक कहानी का आधार मनोविज्ञान होता है।

बात यह है कि बाहर से मनुष्य का जो रूप हम निरन्तर देखते है, भीतर उसका वह रूप नही होता। मनुष्य जो कुछ कहा करता है, कर्म की गति मे उसे वास्तविक सज्ञा वह केवल इसलिए नही दे पाता कि भविष्य की परिस्थितियाँ बदल जाती है, यद्यपि ऐसा भी सभव है। पर प्राय: होता यह है कि स्वार्थ-साधना मे सलग्न थोडी सी भी बुद्धि रखने वाला व्यक्ति प्रकट रूप से जो कुछ कहता है, वह प्राय कृत्रिम और तथ्य हीन होता है। अर्थात् उसके मन, वचन और कर्म मे एकता नही होती। वह मन में जो रखता है वह कहता नही और जो कुछ कहता है, वह करता नही। उसका वचन मन से भिन्न और कम वचन से भिन्न होता है। समाज मे अशान्ति और विषमता का जो कोलाहल और चीत्कार हम निरन्तर देखते है, उसका मल कारण यही अनैक्य है पर प्रश्न यह है कि मनुष्य अपने आपको कहा तक छिपा सकता है, कहा तक वह समाज क सम्मुख उजला और सच्चा बना रह सकता है? समाज से हम चाहे जितनी शिकायत रक्खे, पर उसका एक ऐसा व्यवस्थित रूप तो बन ही गया है कि नैतिक विश्वासों और मान्यताओं से सर्वथा हीन व्यक्ति चाहे जितना बुद्धिमान हो, एक-न-एक दिन उसकी धूर्तता का भंडा-फोड़ होकर रहता है। नारी की परवशता को लेकर अगणित कहानियाँ लिखी गयी हैं, किन्तु वश रहते हुए नारी की वास्तविक स्थिति क्या है?

साहित्य और कला की पृष्ठभूमि पर उतर कर नारी को लेकर जो अनेक काव्य और उपन्यास लिखे गये, क्या उनके द्वारा हम पूर्ण रूप से उसे समझ पाये ? आज के सामाजिक पुरुष की आर्थिक हीनता हमारी समझ मे आती है, किन्तु मानसिक हीनता के मूलाधार क्या है, क्यों मनुष्य इतना असहाय, हीन और पगु बन गया है ? उसकी इस दुरवस्था के मूल मे समाज का ही हाथ है, व्यक्ति के अपने सस्कारों का कुछ नहीं है ? दुष्ट, धूर्त और चरित्रहीन व्यक्ति भी क्या कही धर्मपरायण, सच्चा और साधु नही है ?—मनोवैज्ञानिक कहानियों मे इन्ही बातों पर विचार और अनुशीलन किया जाता है।

[ ४ ]

हिन्दी की मौलिक कहानी का इतिहास अभी केवल चालिस बयालिस वर्ष का है। सन १९०० ई० की 'सरस्वती' मे कई मास तक अगरेजी-साहित्य के अमर कवि शेक्सपियर के कई नाटकों के अनुवाद प्रकाशित हुए। इन अनुवादों का साथ सस्कृत नाटकों के अनुवादों ने दिया। पर अँगरेजी और संस्कृत—दोनों प्रकार के इन नाटकों के अनुवाद नाटक में न होकर कहानी में थे। अँगरेजी के नाटक थे 'सिम्बलीन 'टाइमन आफ एथेंस' और कमेडी आफ़ एरर्स' और सस्कृत के रत्नावली और मालविकाग्निमित्र। बाण की कादम्बरी' का अनुवाद एक लघु उपन्यास के रूप मे इससे भी पूर्व हो चुका था। सच पूछिये तो इन अनुवादो ने ही हिन्दी मे मौलिक कहानी लेखन को प्रेरित किया। पहले लोगों ने कहा—जून सन् १९०० ई० मे प्रकाशित 'इन्दुमती' कहानी हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी है। परन्तु फिर स्वर बदला और यह सिद्ध हो गया कि वह सर्वथा मौलिक नही, 'टेम्पेस्ट' से प्रभावित और एक राजपूत कथा से आधारित है। वातावरण मात्र उसका भारतीय कर दिया गया है। इस कहानी के लेखक थे स्व० पण्डित किशोरी लाल गोस्वामी।

कहते हैं कहानी की काया का निर्माण उन कल्पनाओ से होता है, जो जीवन की साध पूरी नही कर पातीं। अर्थात् लेखक कल्पना-विलास में भी अपनी मानसिक साध पूरी कर लेता है। गोस्वामी जी ने जब इन्दुमती की रचना की होगी, तब कदाचित् उनकी कल्पना रही होगी। हिन्दी में ऐसी कहानियों को जन्म देना जिनकी गरिमा अनवाद से ऊपर हो। पर कल्पना

के आनन्द से भी ऊपर है वह संयोग, जो अकल्पित होता है। अर्थात् अकल्पना का आनन्द कल्पना से भी बढकर होता है। गोस्वामी जी ने कभी सोचा भी न होगा कि आधार ग्रहण की थोडी सी दुर्बलता रखते हुए भी उनकी इन्दुमती कहानी किसी अन्य भाषा की नही, हिन्दी की मौलिक कहानी मानी जायगी।

डॉक्टर श्री कृष्णलाल ने 'हिन्दी कहानियाँ' की विस्तृत भूमिका मे लिखा है कि सन १९०० से १९१० तक का समय आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रयोगात्मक यग था। जब कहानी की कोई निश्चित परम्परा न थी। उसके साहित्यिक रूप तथा शैली के सम्बन्ध मे कोई निश्चित आदर्श सामने न था। किन्तु मिर्जापुर निवासिनी लेखिका श्री बग महिला की 'दुलाई वाली कहानी इसी प्रयोगात्मक युग की देन है यह कहानी शिल्प विधान की दृष्टि से बहुत कुछ निर्दोष है और मौलिकता की दृष्टि से भी वह खरी उतरती है। अत निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी दुलाई वाली' है।

सन् १९११ ई० का वर्ष हिन्दी कहानी के जन्म की दृष्टि से बडा ही श्रेष्ठ और मागलिक था। हिन्दी के रवीन्द्र जयप्रसाद जी की 'ग्राम जो उनकी सर्वप्रथम कहानी थी, 'इन्दु' मे इसी वर्ष प्रकाशित हुई। इसी वर्ष जी० पी० श्री वास्तव की एक कहानी 'इन्दु' मे प्रकाशित हुई और इसी वर्ष श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की पहली कहानी कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले 'भारतमित्र' मे प्रकाशित हुई। इस दशक ने कई कलाकारों को कहानी के क्षेत्र में लाकर खडा कर दिया। सन् १९१३ की 'सरस्वती' मे स्व० पं० विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक अवतरित हुए और सन् १९१५ मे स्व० श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् सन् १९१६ मे युग-निर्माता प्रेमचन्द जैसे कलाकार का उर्दू से हिन्दी में उदय हुआ और इसके पश्चात् सन् १९२० ई० में श्री सुदर्शन ने भी हिन्दी में प्रवेश कर हिन्दी कहानी के वाल जीवन को गौरवान्वित किया।

हिन्दी कहानी के इसी वाल्यकाल मे आदर्शवाद का उदय हुआ। मन् पैंतीस तक के कार्य-काल मे आदर्शवादी कहानियों ने अच्छा विकास पाया। सर्वश्री प्रसाद प्रेमचन्द कौशिक और सदर्शन ये चारों महारथी आदर्शवादी कथा-साहित्य के गौरव माने जाते हैं डसी यग मे श्री जैनेन्द्र कुमार, इन

पक्तियों के लेखक, इलाचन्द्र जोशी और श्री अज्ञेय ने हिन्दी कथा में यथार्थवाद के साथ-साथ मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली का प्रचलन किया। इसके पश्चात् सर्वश्री यशपाल, पहाड़ी, लक्ष्मीचन्द्र, विष्णु प्रभाकर, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा आदि कथाकारों ने यथार्थवादी तथा प्रगतिवादी प्रवृत्तियो से हिन्दी कथा को और आगे बढ़ाया। इधर पिछले दशक में सर्वश्री अमृतलाल नागर, कमल जोशी, बरुआ, रांगेय राघव, रावी, देवीप्रसाद धवन, तथा ओंकार शरद् आदि कथाकारों ने हिन्दी को कई सुन्दर कहानियाँ भेंट की। ध्यान से देखा जाय तो पुराने और नये मिलाकर लगभग बीस ऐसे कथाकार हिन्दी-साहित्य में उपस्थित है, जिनको प्राप्त कर कोई भी भाषा गौरवान्वित हो सकती है।

—भगवतीप्रसाद वाजपेयी

# प्रतिनिधि कहानियाँ

## बेडी

[जयशंकर 'प्रसाद']

"बाबू, जी एक पैसा !"

मै सुनकर चौक पडा। कितनी कारुणिक आवाज़ थी ! देखा, तो एक ९-१० वर्ष का लडका अन्धे की लाठी पकडे खडा था। मैंने कहा—"सूरदास यह तुमको कहाँ से मिल गया ?"

अन्धे को अन्धा न कहकर सूरदास के नाम से पुकारने की चाल मुझे भली लगी। इस सम्बोधन मे उस दीन के अभाव की ओर सहानुभूति और सम्मान की भावना थी, व्यग न था।

उसने कहा—"बाबू जी, यह मेरा लड़का है—मुझ अन्धे की लकड़ी है। इसके रहने से पेटभर खाने को मांग सकता हूं और दबने कुचलने से भी बच जाता हूँ।"

मैंने उसे इकन्नी दी, बालक ने उत्साह से कहा—"अहा इकन्नी बुड्ढे ने कहा—"दाता जुग-जुग जियो !"

मै आगे बढा और सोचता जाता था, इतने कष्ट से जो जीवन बिता रहा है उसके विचार में भी जीवन सब से अमूल्य वस्तु है, हे भगवान्

* * *

"दीनानाथ करी क्यों देरी ?"—दशाश्वमेध की ओर जाते हुए मेरे कानों में एक प्रौढ़ स्वर सुनाई पड़ा। उसमे सच्ची विनय थी—वही, जो तुलसीदास की विनयपत्रिका में ओतप्रोत है। वही आकुलता, सानिघ्य की पुकार, प्रबल प्रहार से व्यथित की कराह ! मोटर की दम्भ भरी भीषण

भों-भो मे विलीन होकर भी वायुमंडल में तिरने लगी। मै अवाक् होकर देखने लगा, वही बुड्ढा ! किन्तु आज अकेला था। मैंने उसे कुछ देते हुए पूछा—"क्यों जी, आज वह तुम्हारा लडका कहां है ?"

बाबू जी, भीख में से कुछ पैसे चुराकर रखता था, वही लेकर भाग गया ! न जाने कहा गया ! उन फूटी आँखों से पानी बहने लगा। मैंने पूछा—उसका पता नहीं लगा ? कितने दिन हुए ?

लोग कहते है वह कलकत्ते भाग गया ! —उस नटखट लडके पर क्रोध से भरा हुआ मै घर की ओर बढा। वहा एक व्यास जी श्रवण-चरित की कथा कह रहे थे। मै सुनते सुनते उस बालक पर अधिक उत्तेजित हो उठा। देखा तो पानी की कल का धुआ पूर्व के आकाश मे अजगर की तरह फैल रहा था।

* * *

कई महीने बीतने पर चौक मे वही बुड्ढा फिर दिखाई पडा। उसकी लाठी पकडे वही लडका अकडा हुआ खडा था। मैंने क्रोध से पूछा—"क्यों बे, तू अन्धे पिता को छोड कर कहाँ भागा था ?" वह मुस्कराता हुआ बोला "बाबूजी, नौकरी खोजने गया था।" मेरा क्रोध उसकी कर्तव्य-बुद्धि से शान्त हुआ। मैंने उसे कुछ देते हुए कहा—"लडके, तेरी यही नौकरी है, तू अपने बाप को छोडकर न भागा कर।

बुड्ढा बोल उठा—"बाबूजी, अब यह नही भाग सकेगा, इसके पैरों मे बेडी डाल दी गई है। मैंने घृणा और आश्चर्य से देखा, सचमुच उसके पैरों में बेडी थी ! बालक बहुत धीरे-धीरे चल सकता था। मैंने मन ही मन कहा—"हे भगवन्, भीख मँगवाने के लिये, पेट के लिये, बाप अपने बेटे के पैर में बेड़ी भी डाल सकता है ! और वह नटखट फिर भी मुस्कराता था ! संसार तेरी जय हो !

मै आगे बढ गया।

* * *

मै एक सज्जन की प्रतीक्षा में खड़ा था, आज नाव पर घूमने का उनसे निश्चय हो चुका था। गाडी, मोटर, तांगे टकराते-टकराते भागे जा रहे थे, सब जैसे व्याकुल। मै दार्शनिक की तरह उनकी चंचलता की आलोचना कर रहा था। सिरस के वृक्ष की आड में फिर वही कण्ठस्वर सुनाई पड़ा।

बुड्ढे ने कहा—"बेटा, तीन दिन और न ले पैसा। मैंने रामदास से कहा है, सात आने में तेरा कुरता बन जायगा। अब ठडक पडने लगी है, उसने ठुनकते हुए कहा—"नही, आज मुझे दो पैसा दो। मै कचालू खाऊँगा। वह देखो, उस पटरी पर बिक रहा है। बालक के मुँह और ऑख मे पानी भरा था। दुर्भाग्य से बुड्ढा उसे पैसा नही दे सकता था। वह न देने के लिए हठ करता ही रहा, परन्तु बालक ही की विजय हुई। वह पैसा लेकर सडक की उस पटरी पर चला। उसके बेडी से जकड़े हुए पैर पैतरा काट कर चल रहे थे। जैसे युद्ध-विजय के लिये।

नवीन बाबू ४० मील की स्पीड से मोटर अपने हाथ से दौडा रहे थे। दर्शकों की चीत्कार से बालक गिर पडा। भीड दौडी, मोटर निकल गई। और वह बुड्ढा विकल हो रोने लगा—अन्धा किधर जाय!

एक ने कहा—"चोट अधिक नही।"

दूसरे ने कहा—"हत्यारे ने बेडी पहना दी है, नही तो क्यों चोट खाता।"

बुड्ढे ने कहा—"काट दो बेडी, बाबा मुझे न चाहिये।"

और मैंने हतबुद्धि होकर देखा कि बालक के प्राण-पखेरू अपनी बेडी काट चुके थे।

# बूढ़ी काकी

[प्रेमचन्द]

बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढी काकी में जिह्वा-स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने का रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा ही। समस्त इद्रियाँ, नेत्र, हाथ और पैर जवाब दे चुके थे। पृथ्वी पर पडी रहती और जब घरवाले कोई बात उनकी इच्छा के प्रतिकूल करते, या भोजन का समय टल जाता, उसका परिमाण पूर्ण न होता, अथवा बाजार से कोई वस्तु आती और उन्हें न मिलती तो रोने लगती थीं। उनका रोना-सिसकना साधारण रोना न था, वह गला फाड-फाडकर रोती थी।

उनके पतिदेव को स्वर्ग सिधारे कालांतर हो चुका था। बेटे तरुण हो होकर चल बसे थे। अब एक भतीजे के सिवाय और कोई न था। उसी भतीजे के नाम उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी थी। भतीजे ने सम्पत्ति लिखाते समय तो खूब लम्बे-चौड़े वादे किए, परन्तु वे सब वादे केवल कुली डिपो के दलालों के दिखाए हुए सब्ज बाग थे। यद्यपि उस सम्पत्ति की वार्षिक आय डेढ-दो सौ रुपये से कम न थी तथापि बूढी काकी को पेट भर भोजन भी कठिनाई से मिलता था। इसमे उनके भतीजे पंडित बुद्धिराम का अपराध था अथवा उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती रूपा का, इसका निर्णय करना सहज नहीं। बुद्धिराम स्वभाव के सज्जन थे, किन्तु उसी समय तक जब तक कि उनके कोष पर कोई आँच न आए। रूपा स्वभाव से तीव्र थी सही, पर ईश्वर से डरती थीं। अतएव बूढी काकी को उसकी तीव्रता उतनी न खलती थी जितनी बुद्धिराम की भलमनसाहत।

बुद्धिराम को कभी-कभी अपने अत्याचार का खेद होता था। विचारते कि इसी सम्पत्ति के कारण मै इस समय भलामानुस बना बैठा हूँ। यदि मौखिक

आश्वासन और सूखी सहानुभूति से स्थिति मे सुधार हो सकता तो उन्हे कदाचित् कोई आपत्ति न होती; परन्तु विशेष व्यय का भय उनकी सच्चेष्टा को दबाए रखता था। यहाँ तक कि यदि द्वार पर कोई भला आदमी बैठा होता और बूढी काकी उस समय अपना राग अलापने लगती तो वह आग हो जाते और घर मे आकर उन्हे जोर से डॉटते। लडको को बुड्ढों से स्वाभाविक विद्वेष होता ही है और फिर जब माता-पिता का यह रग देखते तो बूढी काकी को और भी सताया करते। कोई चुटकी काट कर भागता, कोई उन पर पानी की कुल्ली कर देता। काकी चीख मार कर रोती, परन्तु यह बात प्रसिद्ध थी कि वह केवल खाने के लिए रोती है, अतएव उनके सन्ताप ओर आर्तनाद पर कोई ध्यान नही देता था। हॉ, काकी कभी क्रोधातुर होकर बच्चों को गालियाँ देने लगती तो रूपा घटनास्थल पर अवश्य आ पहुँचती। इस भय से काकी अपनी जिह्वा-कृपाण का कदाचित् ही प्रयोग करती थी, यद्यपि उपद्रव-शान्ति का यह उपाय रोने से कही अधिक उपयुक्त था।

सम्पूर्ण परिवार मे यदि काकी से किसी को अनुराग था, तो वह बुद्धिराम की छोटी लडकी लाडली थी। लाडली अपने दोनों भाइयों के भय मे अपने हिस्से की मिठाई चबेना बूढी काकी के पास बैठ कर खाया करती थी। यही उसका रक्षागार था और यद्यपि काकी की शरण उनकी लोलुपता के कारण बहुत महँगी पडती थी, तथापि भाइयों के अन्याय से कही सुलभ थी। इसी स्वार्थानुकूलता ने उन दोनों मे प्रेम और सहानुभूति का आरोपण कर दिया था।

रात का समय था। बुद्धिराम के द्वार पर सहनाई बज रही थी और गॉव के बच्चों का झुड विस्मयपूर्ण नेत्रों से गाने का रसास्वादन कर रहा था। चारपाइयों पर मेहमान विश्राम करते हुए नाइयों से मुक्कियाँ लगवा रहे थे। समीप ही खड़ा हुआ भाट बिरदावली सुना रहा था और कुछ भावज्ञ मेहमानों के "वाह, वाह" पर ऐसा खुश हो रहा था मानों इस वाह-वाह का यथार्थ में वही अधिकारी है। दो एक अँगरेजी पढे हुए नवयुवक इन व्यवहारो से उदासीन थे। वे इस गवाँर-मंडली में बोलना अथवा सम्मिलित होना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे।

आज बुद्धिराम के बडे लडके सुखराम का तिलक आया है। यह उसी का उत्सव है। घर के भीतर स्त्रियाँ गा रही थी और रूपा मेहमानों के लिए भोजन के प्रबन्ध मे व्यस्त थी। भट्टियों पर कड़ाह चढे थे। एक मे पूड़ियाँ कचौरियाँ निकल रही थी। दूसरे मे अन्य पकवान बन रहे थे। एक बडे हडे मे मसालेदार तरकारी पक रही थी। घी और मसाले की क्षुधावर्द्धक सुगंधि चारों ओर फैली हुई थी।

बूढी काकी अपनी कोठरी में शोकमय विचार की भाँति बैठी हुई थी वह स्वाद-मिश्रित सुगंधि उन्हें बेचैन कर रही थी। वे मन ही मन विचार कर रही थी, संभवत. मुझे पूडियाँ न मिलेगी। इतनी देर हो गई, कोई भोजन ले कर नही आया, मालूम होता है, सब लोग भोजन कर चुके। मेरे लिए कुछ न बचा। यह सोच कर उन्हे रोना आया; परंतु अशकुन के भय से वह रो न सकी।

"आहा! कैसी सुगंधि है! अब मुझे कौन पूछता है? जब रोटियों ही के लाले पडे है तब ऐसे भाग्य कहाँ कि भर पेट पूड़ियाँ मिले?"—यह विचार कर उन्हे रोना आया, कलेजे मे एक हूक-सी उठने लगी। परतु रूपा के भय से उन्होंने फिर भी मौन धारण कर लिया।

बूढी काकी देर तक इन्ही दुःखदायक विचारों मे डूबी रही। घी और मसालो की सुगंधि रह-रह कर मन को आपे से बाहर किए देती थी। मुँह में पानी भर-भर आता था। पूडियों का स्वाद स्मरण कर के हृदय में गुदगुदी होने लगती थी। किसे पुकारूँ, आज लाडली बेटी भी नही आई। दोनों छोकडे सदा दिक किया करते है। आज उनका भी कही पता नही। कुछ मालूम तो होता कि क्या बन रहा है।

बूढ़ी काकी की कल्पना मे पूड़ियों की तस्वीर नाचने लगी। खूब लाल-लाल, फूली-फूली, नरम-नरम होंगी; रूपा ने भली भाति मोयन दिया होगा। कचौरियों मे अजवाइन और इलायची की महक आ रही होगी। एक पूरी मिलती तो जरा हाथ मे ले कर देखती। क्यों न चल कर कड़ाह के सामने ही बैठूं। पूड़ियाँ छन-छनकर तैरती होंगी। फूल हम घर में भी सूंघ सकते है, परंतु वाटिका मे कुछ और बात होती है। इस प्रकार निर्णय कर के बूढी काकी उकडूं बैठ कर हाथों के बल सरकती हुई बड़ी कठिनाई से चौखट से उतरी

और धीरे-धीरे रेगती हुई कडाह के पास जा बैठी। यहाँ आने पर उन्हें उतना ही धैर्य हुआ जितना भूखे कुत्ते को खाने वाले के सम्मुख बैठने मे होता है।

रूपा उस समय कार्य-भार से उद्विग्न हो रही थी। कभी इस कोठे मे जाती, कभी उस कोठे मे; कभी कडाह के पास आती, कभी भडार में जाती। किसी ने बाहर से आ कर कहा—महाराज ठंडई माँग रहे है। ठडई देने लगी। इतने मे फिर किसी ने आकर कहा—भाट आया है, उसे कुछ दे दो। भाट के लिए सीधा निकाल रही थी कि एक तीसरे आदमी ने आकर पूछा—"अभी भोजन तैयार होने मे कितना विलम्ब है? जरा ढोल-मजीरा उतार दो।" बेचारी अकेली स्त्री दौडती-दौडती व्याकुल हो रही थी, झुँझलाती थी, कुढती थी, परतु क्रोध प्रकट होने का अवसर न पाती थी। भय होता कही पडोसिने यह न कहने लगे कि इतने मे ही उबल पडी। प्यास से स्वय उसका कठ सूख रहा था। गर्मी के मारे फूँकी जाती थी, परतु इतना अवकाश भी नही था कि जरा पानी पी ले अथवा पंखा ले कर झले। यह भी खटका था कि जरा आँख हटी और चीजों की लूट मची। इस अवस्था में उसने बूढी काकी को कडाही के पास बैठा देखा तो जल गई। क्रोध न रुक सका। इसका भी न ध्यान रहा कि पडोसिने बैठी हुई है मन मे क्या कहेंगी, पुरुषों मे लोग सुनेंगे तो क्या कहेगे। जिस प्रकार मेढक केंचुए पर झपटता है, उसी प्रकार वह बूढ़ी काकी पर झपटी और उन्हें दोनों हाथों से झिझोड कर बोली—ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड ? कोठरी में बैठते क्या दम घुटता था? अभी मेहमानों ने नही खाया, भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक धैर्य न हो सका? आ कर छाती पर सवार हो गई। जल जाय ऐसी जीभ। दिन भर खाती न होतीं तो न जाने किसकी हाँड़ी में मुँह डालती? गाँव देखेगा तो कहेगा बुढ़िया भरपेट खाने को नही पाती, तब तो इस तरह मुँह बाए फिरती हैं। डाइन न मरे न माँचा छोड़े। नाम बेचने पर लगी है। नाक कटवाकर दम लेंगी। इतना ठूँसती है, न जाने कहाँ भस्म हो जाता है। लो! भला चाहती हो तो जाकर कोठरी में बैठो, जब घर के लोग खाने लगेंगे तब तुम्हें भी मिलेगा। तुम कोई देवी नही हो कि चाहे किसी के मुँह में पानी न जाय; परंतु तुम्हारी पूजा पहले हो जाय। बूढ़ी काकी ने सिर न

उठाया, न रोई, न बोली। चुपचाप रेंगती हुई अपनी कोठरी में चली गई। आघात ऐसा कठोर था कि हृदय और मस्तिष्क की सपूर्ण शक्तियाँ, सपूर्ण विचार और सपूर्ण भार उसी ओर आकर्षित हो गए थे। नदी मे जब करार का कोई वृहद् खड कट कर गिरता है तो आसपास का जल-समूह चारों ओर से उसी स्थान को पूरा करने के लिए दौडता है।

भोजन तैयार हो गया। आँगन मे पत्तल पड गए। मेहमान खाने लगे। स्त्रियों ने जेवनार-गीत गाना आरम्भ कर दिया। मेहमानो के नाई और सेवकगण भी उसी मडली के साथ, किन्तु कुछ हट कर, भोजन करने बैठे थे, परन्तु सभ्यतानुसार जब तक सब के सब खा न चुके कोई उठ नही सकता था। दो-एक मेहमान जो कुछ पढे-लिखे थे सेवको के दीर्घाहार पर झुँझला रहे थी। वे इस बन्धन को व्यर्थ और बे-सिर-पैर की बात समझते थे।

बूढी काकी अपनी कोठरी मे जा कर पश्चात्ताप कर रही थी कि मैं कहाँ से कहाँ गई। उन्हें रूपा पर क्रोध नही था। अपनी जल्दबाजी पर दु.ख था। सच ही तो है जब तक मेहमान लोग भोजन न कर चुकेंगे घरवाले कैसे खाएँगे। मुझसे इतनी देर भी नही रहा गया। सब के सामने पानी उतर गया। अब जब तक कोई बुलाने न आएगा न जाऊँगी।

मन-ही-मन इसी प्रकार विचार कर वह बुलावे की प्रतीक्षा करने लगी। परन्तु घी का रुचिकर सुबास बडा ही धैर्य-परीक्षक प्रतीत हो रहा था। उन्हें एक-एक पल एक-एक युग के समान मालूम होता था। अब पत्तल बिछ गए होंगे। अब मेहमान आ गए होगे। लोग हाथ-पैर धो रहे है, नाई पानी दे रहा है। मालूम होता है लोग खाने बैठ गए। जेवनार गाया जा रहा है, यह विचार कर वह मन को बहलाने के लिए लेट गई। धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाने लगी। उन्हें मालूम हुआ कि मुझे गाते देर हो गई। क्या इतनी देर तक लोग भोजन कर ही रहे होंगे। किसी की आवाज नही सुनाई देती। अवश्य ही लोग खा-पीकर चले गए। मुझे कोई बुलाने नही आया। रूपा चिढ़ गई है क्या जाने न बुलाए, सोचती हो कि आप ही आवेगी, वह कोई मेहमान तो है नही जो उन्हें बुलाऊँ। बूढ़ी काकी चलने के लिए तैयार हुई। यह विश्वास कि एक मिनट में पूडियाँ और मसालेदार तरकारियाँ सामने आएँगी उनकी स्वादें-द्रियों को गुदगुदाने लगा। उन्होंने मन में तरह-तरह के मसूबे बाधें—पहले

तरकारी मे पूडियां खाऊँगी. फिर दही और शक्कर से; कचौरियाँ रायते के साथ मजेदार मालूम होगी। चाहे कोई बुरा माने चाहे भला, मै तो माँग माँगकर खाऊँगी। यही न लोग कहेगे कि इन्हे विचार नही? कहा करे, इतने दिनो के बाद पूडियां मिल रही है तो मुँह जूठा कर के थोडे ही उठ आऊँगी।

वह उकडू बैठकर हाथो के बल खसकती आँगन मे आई। परन्तु हाय दुर्भाग्य! अभिलाषा ने अपने पुराने स्वभाव के अनुसार समय की मिथ्या कल्पना की थी। मेहमान-मडली अभी बैठी हुई थी। कोई खा कर उँगलियाँ चाटता था, कोई तिर्छे नेत्रों से देखता था कि और लोग अभी खा रहे है या नही? कोई इस चिन्ता मे था कि पत्तल पर पूडियाँ छूटी जाती है किसी तरह इन्हे भीतर रख लेता। कोई दही खा कर जीभ चटकारता था, परन्तु दूसरा दोना माँगते सकोच करता था। इतने मे बूढी काकी रेगती हुई उनके बीच मे जा पहुँची। कई आदमी चौक कर उठ खडे हुए। पुकारने लगे—अरे यह बुढिया कौन है? यह कहा से आ गई? देखो किसी को छू न दे।

पंडित बुद्धिराम काकी को देखते ही क्रोध से तिलमिला गए, पूडियो का थाल लिए खडे थे। थाल को जमीन पर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेईमान और भगोडे असामी को देखते ही झपटकर उसका टेटुआ पकड लेता है उसी तरह लपक कर उन्होने बूढ़ी काकी के दोनों हाथ पकडे और घसीटते हुए ला कर उन्हे अँधेरी कोठरी मे धम से पटक दिया। आशा-रूपी-वाटिका लू के एक ही झोके से नष्ट-विनष्ट हो गई।

मेहमानों ने भोजन किया। घरवालों ने भोजन किया। बाजेवाले, धोबी, चमार भी भोजन कर चुके, परन्तु बूढी काकी को किसी ने न पूछा। बुद्धिराम और रूपा दोनों ही बूढ़ी काकी को उसकी निर्लज्जता के लिए दंड देने का निश्चय कर चुके थे। उनके बुढापे पर, दीनता पर, हत-ज्ञान पर किसी को करुणा न आती थी। अकेली लाडली उनके लिए कुढ़ रही थी।

लाडली को काकी से अत्यन्त प्रेम था। बेचारी भोली लडकी थी। बाल-विनोद और चंचलता की उसमें गंध तक न थी। दोनों बार जब उसके माता-पिता ने काकी को निर्दयता से घसीटा तो लाडली का हृदय ऐंठ कर रह गया। वह झुँझला रही थी कि यह लोग काकी को क्यों बहुत-सी पूड़ियाँ

नही दे देते ? क्या मेहमान सब की सब खा जायँगे ? और यदि काकी ने मेहमानों के पहले खा लिया तो क्या बिगड़ जाएगा ? वह काकी के पास जा कर उन्हें धैर्य देना चाहती थी, परन्तु माता के भय से न जाती थी। उसने अपने हिस्से की पूड़ियाँ बिलकुल न खाई थी। अपनी गुडियों की पिटारी मे बन्द कर रक्खी थी। वह उन पूडियों को काकी के पास ले जाना चाहती थी। उसका हृदय अधीर हो रहा था। बूढी काकी मेरी बात सुनते ही उठ बैठेंगी। पूडियाँ देख कर कैसी प्रसन्न होंगी ! मुझे खूब प्यार करेंगी !

रात के ग्यारह बज गए। रूपा आँगन मे पडी सो रही थी। लाडली की आँखों में नीद न आती थी। काकी को पूडियाँ खिलाने की खुशी उसे सोने न देती थी। उसने गुडियों की पिटारी सामने ही रखी थी। जब विश्वास हो गया कि अम्मा सो रही है; तो वह चुपके-से उठी और विचारने लगी, कैसे चलूँ। चारों ओर अँधेरा था। केवल चूल्हों में आग चमक रही थी; और चूल्हों के पास एक कुत्ता लेटा हुआ था। लाडली की दृष्टि द्वार के सामने नीम की ओर गई। उसे मालूम हुआ कि उस पर हनुमान जी बैठे हुए हैं। उनकी पूँछ, उनकी गदा, सब स्पष्ट दिखलाई दे रही थी। मारे भय के उसने आँखें बद कर लीं, इतने मे कुत्ता उठ बैठा, लाडली को ढाढ़स हुआ। कई सोए हुए मनुष्यों के बदले एक जागता हुआ कुत्ता उसके लिए अधिकतर धैर्य का कारण हुआ। उसने पिटारी उठाई और बूढी काकी की कोठरी की ओर चली।

बूढी काकी को केवल इतना स्मरण था कि किसी ने मेरे हाथ पकड़ कर घसीटे, फिर ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई पहाड पर उडाए लिए जाता है। उनके पैर बार-बार पत्थरों से टकराए तब किसी ने उन्हें पहाड़ पर से पटका, वे मूर्छित हो गई।

जब वे सचेत हुई तो किसी की जरा भी आहट न मिलती थी। समझा कि सब लोग खा-पी कर सो गए और उनके साथ मेरी तकदीर भी सो गई। रात कैसे कटेगी ? राम ! क्या खाऊँ, पेट मे अग्नि धधक रही है ? हा ! किसी ने मेरी सुधि न ली ! क्या मेरा ही पेट काटने से धन जुट जायगा ? इन लोगों को इतनी भी दया नही आती कि न जाने बुढिया कब मर जाय ? उसका जी क्यों दुखावे ? मैं पेट की रोटियाँ ही खाती हूँ कि और कुछ ? इस पर यह हाल ! मैं अधी अपाहिज ठहरी, न कुछ सुनूँ न बूझूँ, यदि आँगन मे चली गई

तो क्या बुद्धिराम से इतना कहते न बनता था कि काकी अभी लोग खा रहे हैं, फिर आना। मुझे घसीटा, पटका। उन्ही पूडियों के लिए रूपा ने सब के सामने गालियाँ दी। उन्ही पूडियो के लिए इतनी दुर्गति करने पर भी उनका पत्थर का कलेजा न पसीजा। सब को खिलाया, मेरी बात तक न पूछी। जब तब ही न दी, तब अब क्या देगी ?

यह विचार कर काकी निराशामय सतोष के साथ लट गई। ग्लानि से गला भर-भर आता था, परंतु मेहमानों के भय से रोती न थी।

सहसा उनके कानों मे आवाज आई—"काकी उठो, मै पूडियाँ लाई हूँ।"

काकी ने लाडली की बोली पहचानी। चटपट उठ बैठी। दोनों हाथो से लाडली को टटोला और उसे गोद मे बैठा लिया।

लाडली ने पूडियाँ निकाल कर दी। काकी ने पूछा—"क्या तुम्हारी अम्मा ने दी है ?" लाडली ने कहा—"नहीं यह मेरे हिस्से की है।" काकी पूड़ियों पर टूट पडी। पाँच मिनट मे पिटारी खाली हो गई।

लाडली ने पूछा—"काकी, पेट भर गया ?" जैसे थोडी-सी वर्षा ठडक के स्थान पर और भी गर्मी पैदा कर देती है उसी भाँति इन थोडी-सी पूडियो ने काकी की क्षुधा और इच्छा को उत्तेजित कर दिया था। बोली—"नही बेटी, जा कर अम्मा से और माँग लाओ।" लाडली ने कहा—"अम्मा सोती हैं, जगाऊँगी तो मारेगी।"

काकी ने पिटारी को फिर टटोला। उसमें कुछ खुर्चन गिरे थे। उन्हें निकाल कर वे खा गई। बार-बार होंठ चाटती थी। चटखारे भरती थी।

हृदय मसोस रहा था कि और पूड़ियाँ कैसे पाऊँ। संतोष-सेतु जब टूट जाता है तब इच्छा का बहाव अपरिमित हो जाता है। मतवालों को मद का स्मरण कराना उन्हें मदाध बनाना है। काकी का अधीर मन इच्छा के प्रबल प्रवाह में बह गया। उचित और अनुचित का विचार जाता रहा। वे कुछ देर तक उस इच्छा को रोकती रही। सहसा लाडली से बोली—"मेरा हाथ पकड़ कर वहाँ ले चलो जहाँ मेहमानों ने बैठ कर भोजन किया है।"

लाडली उनका अभिप्राय समझ न सकी। उसने काकी का हाथ पकडा और ले जा कर जूठे पत्तलों के पास बिठला दिया। दीन, क्षुधातुर, हत-ज्ञान बुढ़िया पत्तलो से पूडियो के टूकडे चुन-चुन कर भक्षण करने लगी। ओह !

दही कितना स्वादिष्ट था, कचौरियाँ कितनी सलोनी, खस्ता कितने मुको-मल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थी कि मैं वह काम कर रही हूँ जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों के जूठे पत्तल चाट रही हूँ। परन्तु बुढापा तृष्णा-रोग का अतिम समय है, जब सपूर्ण इच्छाएँ एक ही केन्द्र पर आ सकती है। बूढी काकी मे यह केन्द्र उनकी स्वादेन्द्रिय थी।

ठीक उसी समय रूपा की आँखे खुली। उसे मालूम हुआ कि लाडली मेरे पास नही है। वह चौकी, चारपाई के इधर-उधर ताकने लगी कि कही नीचे तो नही गिर पडी। उसे वहाँ न पाकर वह उठ बैठी तो क्या देखती है कि लाडली जूठे पत्तलों के पास चुपचाप खडी है और बूढी काकी पत्तलों पर से पूडियों के टुकडे उठा-उठा कर खा रही है। रूपा का हृदय सन्न हो गया। किसी गाय की गर्दन पर छुरी चलते देख कर जो अवस्था उसकी होती, वही उस समय हुई। एक ब्राह्मणी दूसरों का जूठा पत्तल टटोले, इससे अधिक शोकमय दृश्य असभव था। पूडियों के कुछ ग्रासों के लिए उसकी चचेरी सास ऐसा पतित और निकृष्ट कर्म कर रही है! यह वह दृश्य था जिसे देख कर देखने वालों के हृदय काँप उठते है। ऐसा प्रतीत होता मानो जमीन रुक गई, आसमान चक्कर खा रहा है, ससार पर कोई नई विपत्ति आने वाली है। रूपा को क्रोध न आया। शोक के सम्मुख क्रोध कहाँ? करुणा और भय से उसकी आँखे भर आई। इस अधर्म के पाप का भागी कौन है? उसने सच्चे हृदय से गगन-मडल की ओर हाथ उठा कर कहा—"परमात्मा, मेरे बच्चों पर दया करो, इस अधर्म का दड मुझे मत दो नही तो हमारा सत्यानाश हो जायगा।"

रूपा को अपनी स्वार्थपरता और अन्याय इस प्रकार प्रत्यक्ष-रूप मे कभी न देख पडा था। वह सोचने लगी—हाय! कितनी निर्दय हूँ। जिसकी सम्पत्ति से मुझे दो सौ रुपया वार्षिक आय हो रही है, उसकी यह दुर्गति! और मेरे कारण! हे दयामय भगवान्! मुझसे बडी भारी चूक हुई है, मुझे क्षमा करो। आज मेरे बेटे का तिलक था। सैकड़ों मनुष्यों ने भोजन पाया। मैं उनके इशारो की दासी बनी रही। अपने नाम के लिए सैकडों रुपये व्यय कर दिए; परंतु जिसकी बदौलत हजारों रुपये खाए उसे इस उत्सव में भी भर-पेट भोजन न दे सकी। केवल इसी कारण तो कि वह वृद्धा है, असहाय है।

रूपा ने दिया जलाया, अपने भंडार का द्वार खोला और एक थाली में संपूर्ण सामग्रियां सजा कर लिए हुए काकी की ओर चली।

आधी रात जा चुकी थी, आकाश पर तारों के थाल सजे हुए थे और उन पर बैठे हुए देवगण स्वर्गीय पदार्थ सजा रहे थे, परन्तु उनमें किसी को वह परमानंद प्राप्त न हो सकता था जो बूढ़ी काकी को अपने सम्मुख थाल देख कर प्राप्त हुआ। रूपा ने कंठावरुद्ध स्वर में कहा—"काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसका बुरा न मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दे।"

भोले-भाले बच्चों की भांति, जो मिठाइयाँ पा कर मार और तिरस्कार सब भूल जाता है, बूढ़ी काकी बैठी हुई खाना खा रही थी। उनके एक-एक रोएं से सच्ची सदिच्छाएं निकल रही थीं और रूपा बैठी इस स्वर्गीय दृश्य का आनंद लूटने में निमग्न थी।

# दही की हांड़ी

[ चतुरसेन शास्त्री ]

सत्रहवी शताब्दी खतम हो रही थी और उसके साथ राजपूताने का ओजपूर्ण जीवन भी अस्तंगत हो रहा था। बादशाह आलमगीर दक्षिण के कभी समाप्त न होने वाले युद्धों मे फसा था। वह वृद्ध हो गया था; और रोग उसे घेरे रहते थे। वह अपने ५० वर्ष भयानक परिश्रम के निरर्थक शासन के भविष्य को समझ गया था। वह रूठे हुए राजपूतों को जो मुगल राज्य के खम्भे थे, मनाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था। लोग उससे थक गए थे। वह अपने भक्त-भरे हाथों का स्वप्न देखता था, और मूर्खतापूर्ण साम्प्रदायिकता पर पश्चात्ताप करता था।

मारवाड के प्रतापी योधा जसवन्त सिंह का देहान्त हो चुका था। और उनके वीर पुत्र अजीतसिंह जालौर में पडे वृद्ध बादशाह की मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। औरगजेब का सूबेदार नाज़िम कुली जोधपुर का गवर्नर था। मारवाड की निरीह प्रजा जसवंत नाहर को खोकर जैसे-तैसे मुग़लों के अत्याचार सहन कर रही थी। मनुष्य जाति का महाशत्रु आलमगीर कब मृत्यु शय्या पर गिरे, महाराज अजीतसिंह और दुर्गादास को कब अभिसंधि प्राप्त हो—जोधपुर का कब उद्धार हो—लक्षावधि मारवाडी प्रजा इसी प्रतीक्षा में थी।

*　　　　*　　　　*

ग्रीष्म समाप्त हो रहा था। सुन्दर प्रभात का सूर्य धीरे धीरे ऊपर चढ़ रहा था। आकाश में जहा-तहां बदली दीख पडती थी। सोजन गांव से बाहर मुगल सेना पडाव डाले पड़ी थी। यह सिउना के किले कुमक ले कर जा रही थी। जिसका रक्षक मुर्तुजा बेग मेवाती था और जिसे दो मास से राठौरो ने घेर रखा था

चार सिपाही झूमते-झामते गांव में घूम रहे थे। उनके साथ एक खच्चर था। ऊपर बहुत सी खाद्य सामग्री थी। उनकी घनी काली दाढ़ी, लाल-लाल आँखे, चमकीले जिरह बख़्तर और घमण्ड भरी चाल तथा कामुकता-भरी दृष्टि को देख कर स्त्रिया और बच्चे भयभीत हो रहे थे। बच्चे गलियों मे छिप जाते थे, और स्त्रिया घरो मे। गाव में सन्नाटा था। सब लोग चुपचाप अपने अपने घरों मे छिपे बैठे थे, उन्हे जिस जिन्स की आवश्यकता होती, वह उन्हें गांव मे जहां दीख जाती, उठा कर बिना सकोच खच्चर पर लाद लेते थे। वे अपनी खूंख्वार आखों से गांव के आबाल वृद्ध को घूरते हुए, घनी काली दाढी पर हाथ फेरते हुए, कमर की तलवार को अनावश्यक रीति पर हिलाते हुए निर्भय घूम रहे थे। इक्का-दुक्का स्त्रिया घाट-खेत मे यदि वे देख पाते तो छेड देते थे। स्त्रिया भाग कर घरों मे घुस जाती थी। वृद्ध पुरुष उन्हे देखते ही गर्दन नीची कर लेते थै। युवक गण चुपचाप दांत पीसते और ठंडी सास लेते थे। गाव मे एक भी ऐसा माई का लाल न था जो उनकी लूटपाट और अत्याचार का विरोध करे।

देखते देखते सूरज सिर पर चढ आया। चारों के शरीर पसीने से भीग कर तर हो गये, एक ने कहा—उफ गजब की गर्मी है। जल्दी करो, फिर आग बरसने लगेगी। इस कमबख्त मुल्क मे पानी भी तो नही बरसता? दूसरे ने कहा—ठीक कहते हो, मगर दही? दही तो अभी मिला ही नहीं। खा साहब हमें खा न जावेगे? इस पर तीनों ने ठहाका मार कर हँस दिया।

सामने एक वृद्ध पुरुष नंगे बदन अपने घर के द्वार पर चारपाई पर बैठा ५-६ वर्ष के एक बालक को खिला रहा था। बालक अत्यन्त सुन्दर और पुष्ट था। चारों यम-सदृश व्यक्तियों को अपनी ओर आते देख बच्चा भय से वृद्ध की छाती में चपक रहा।

उसने भय से कम्पित स्वर में कहा—"बाबा, तुर्क तुर्क आ रहे है।"

"कुछ डर नही बेटे। तुम घर में जाओ।" इतना कह कर वृद्ध ने बालक को घर मे भेज दिया। और आप स्वयं आगे बढ कर उनसे पूछने लगा—"आप लोग किसे ढूढ़ रहे हैं?"

"दही चाहिए बुड्ढे, दही। दही घर में है? एक ने कर्कश स्वर मे कहा

'मेने यहा दही नही होता, म ब्राह्मण हूँ, यह ठाकुरों का घर है, शायद हो. पर ठाकुर घर मे नही है, तुम ठहरो, मै पूछ कर देख आता हूँ।'' वृद्ध ने इतना कहा और ठाकुर के घर की ओर कदम बढाया।

हम लोग खुद देख लेंगे। यह कह कर चारो उद्दण्ड सिपाही घर मे घुसने लगे।

वृद्ध ने वाधा दे कर कहा—''यह नही हो सकता। वहा स्त्रिया है, मर्द कोई घर पर नही है, तुम लोग भीतर नही घुस सकते, तुम लोग यहीं ठहरो।

बूढे की बात मुँह ही मे रही। उसकी बात का उत्तर दिए बिना ही एक सिपाही ने जोर से बूढे के मुह पर घूसा मारा। वृद्ध तुरन्त धरती मे गिर पडा। चारों सिपाही घर के भीतर घुस गए। और क्षण-भर मे दही की भरी हाडी उठा कर अपने रास्ते लगे।

घर के भीतर से स्त्रियों की एक हल्की चीत्कार-ध्वनि सुनाई दी—ग्रामवासी चित्र-लिखित-से देखते रहे।

[ ३ ]

ठाकुर अधेड अवस्था को पार कर गया था। उसकी दाढी के १२ आने बाल पक गए थे, पर कमर उसकी झुकी न थी, मूछें चढी थी। वह लम्बे कद का छरहरा आदमी था, शरीर पर वह केवल धोती पहने था, पैर भी नगे थे।

घर लौट कर उसने द्वार ही पर सब माजरा सुना, वह पल-भर वहा रुका, फिर भीतर घर में घुस गया। एक ही मिनट के बाद वह घर से बाहर था, उसके हाथ मे नगी तलवार थी और उसकी भृकुटी मे बल पडे थे। उसने कसकर दोनो होठों को सम्पुट कर लिया था, उसकी आँखों से आग बरस रही थी।

गाँव के बहुत लोग वहां जमा हो गए थे। सब ने ठाकुर को निषेध किया। एक-दो वृद्धो ने उसका हाथ भी पकड कर रोका, लोग उसे समझा रहे थे—बादशाह की सेना से बैर लेना ठीक नही, तुच्छ दही की एक हाडी थी, आखिर औकात ही क्या है, जाने दो, अपने बाल-बच्चो की खैर मनाओ, जो हो गया सो गया।

ठाकुर लोहे के खम्भे की भाति मुट्ठी मे नगी तलवार लिए सब के बीच मे खडा था। उसकी दृष्टि उन सब से परे अदृश्य मे थी—सब की बाते सुन कर उसने बादल के समान गर्ज-भरे स्वर मे कहा—

"यह सब ठीक है भाइयो, परन्तु यदि वे मुझसे मागते तो मै नाही न करता। आप जानते ही है कि मै गरीब राजपूत हूं, पर फिर भी मेरे द्वार से कोई खाली नही लौटता। फिर ये तो राज के आदमी थे, इनकी सेवा करना प्रजा का धर्म भी था; परन्तु मेरे घर मे मेरी गैरहाजिरी मे घुस जाना और जबर्दस्ती दही उठा ले जाना मै सहन नही कर सकता। आज वे दही की हाडी ले गए है—कल को वे मेरी बहू-बेटी को भी पकड कर ले जा सकते है।

उसने एक कठोर दृष्टि से भीड की ओर देखा, एक बार कस कर तलवार थामी, और आगे बढा। वह लोह-पुरुष की भाति कदम बढाता जा रहा था। भीड पीछे हट गयी थी। धीरे-धीरे उसके पैर तेज होने लगे। गाव के लोग चुपचाप पीछे दौड़ रहे थे।

[ ४ ]

वे चारो मजे मे गप्पे उडाते, खच्चर को टरकाते धीरे-धीरे आगे बढ रहे थे। अभी वे गाव के सिवाने से बाहर न निकले थे। ठाकुर ने पीछे से ललकार बतायी—'खडे रहो, ओ लुटेरो

चारों लौट कर खडे हो गए। देखा—बूढा राजपूत नगी तलवार लिए आगे बढ रहा है। उसके पैर मे जूता नही है, बदन मे सिर्फ धोती है, सिर पर पाग है। वह कालपुरुष की भाति आ रहा था।

चारों मुगलो ने तलवारे खीच ली। राजपूत ने एकाएक पीछे मुड कर देखा। क्षण-भर खडे हो कर उसने गाववालों से कहा—

"बस, यहां से आगे कोई न बढे, मेरा अकेले का उनसे झगडा है। उसमे किसी का साझा नही है, मै उनसे निबट लूंगा।"

भीड़ वही रुक गयी। ठाकुर कुछ कदम और आगे बढ़ा। चारों सिपाही वहीं खड़े थे। एक के हाथ में दही की हाडी थी। ठाकुर ने ललकार कर कहा—"मेरी दही की हांडी रख दे।"

सिपाही ने तलवार हवा मे घुमा कर कहा—अच्छा ब काफिर, तेरी यह औकात! अभी तुझे इस गुस्ताखी का मजा चखाना है। ठाकुर ने सिह की

भांति उछाल भरी। वह उन चारोंके बीचमें था। एक ही वार में बकवाद करनेवालेका सिर उसने भुट्टे-सा उडा दिया—शेष तीनों जमकर युद्ध करने लगे। कुछ छणके बाद दूसरा आदमी भी धराशायी हुआ। शेष दो उछल-उछलकर तलवारों की मार करने लगे। राजपूतने एक जनेऊआ हाथ देकर तीसरे के भी दो टुकडे कर दिये।

चौथा आदमी भाग खडा हुआ। राजपूतने दहीकी हाडी उठायी और और गावकी ओर चला। उसके शरीर मे बहुतसे घाव लगे थे, उनसे खून की धार बह रही थी। उन सब की उसे परवा न थी। तलवार उसी भांति उसकी लोहमुष्टिमे बन्द थी—गावके लोग सन्नाटेमे आकर देख रहे थे। एक शब्द भी किसी के मुह पर न था। ठाकुर आगे-आगे था, और उसकी देहसे टपकती हुई रक्तकी बूदोंके दोनो ओर गांवके आवालवृद्ध लौट रहे थे।

[ ५ ]

घर के आंगन मे आ कर उसने दही की हाडी गोबर से लिपे हुए तुलसी के चबूतरे पर रख दी। फिर उसने हाथ जोड कर तुलसी के वृक्ष को नमस्कार किया। गाव के लोगो ने उसे घावों पर पट्टी बांधने को कहा, परन्तु उसने एक न सुना। उसने सब को घर से बाहर चले जाने की आज्ञा दी—इसके बाद वह घर के भीतर गया। कोठरी का एक कोना खोदा—कुछ मुहरें और सोने के गहने थे। वह पोटली उसने हाथ में ली। अपने ११ वर्ष के एकमात्र बेटे का हाथ पकडा और घर के बाहर आया। एक शब्द भी उसके मुख से नही निकला था। गाव-भर उसके द्वारपर एकत्रित था—सब विस्मय और भयपूर्ण दृष्टि से उसे घूर रहे थे। उसने उसी मेघ के समान गरजती आवाज मे वृद्ध ब्राह्मण को निकट आने को कहा। पास आने पर उसने पुत्र का हाथ और वह सोने की पोटली ब्राह्मण के हाथ में दे कर कहा—"आज से यह पुत्र तुम्हारा हुआ दादा! यह इसके भरण-पोषण का खर्च है।" उसकी वाणी कम्पित हुई। पर उसने गर्व से गर्दन तान ली। रक्त झर-झर उसके शरीर से गिर रहा था। और वह दाहिने हाथ मे तलवार कस कर पकडे हुए था।

वह फिर घर के भीतर गया। घर में पत्नी, माता और विधवा बहिन थी। तीनों के सामने पहुँच कर उसने कहा—तुम तीनों इस चबूतरे पर आ बैठो—और भगवान का स्मरण करो, आज भगवान् की गोद मे जाने का

समय आ गया। तीनों अकम्पित पद से वहा आ कर बैठ गयी। सब से प्रथम उसने माता के चरण छू कर पदरज आखों मे लगायी। उसकी तलवार उठी और वृद्धा का सिर कट कर तुलसी के पेड पर जा गिरा। इसके बाद उसने बहिन के सिर पर हाथ रखा—उसकी आंखों मे तरी आयी, पर दूसरे ही क्षण तलवार लडकी की गर्दन पर पडी और उसका सिर भी वृद्धा के बराबर जा गिरा। इसके बाद पत्नी की ओर उसने देखा—वह पति के चरणों में सिर दिये लोट रही थी। ठाकुर के शरीर का रक्त उसके ऊपर टपक-टपक कर सौभाग्य का सिंचन कर रहा था। ठाकुर ने कहा—उठो, रामू की मां, एक बार गले मिल लें, फिर तो हम स्वर्ग मे मिलेंगे।

पत्नी को उठा कर उसने हृदय से लगाया। उसने कहा—हम लोगों ने बचपन से बुढापे के द्वार तक दोड लगायी। जीवन मे हमने सिर्फ एक पुत्र पाया। उसे आज अचानक छोडना पडा। पर कुछ हर्ज नही प्यारी, आज नही तो कल मरते ही। राजपूत की भाति मरने मे कुछ और ही आनन्द है। आओ, अधिक मोह न करो।

ठकुरानी ने गर्दन झुका दी और वह घुटनों के बल धरती पर बैठ गयी। राजपूत ने खूब जोर मे अपना होठ दातों मे भीचा, उनसे रक्त भी निकल आया। उसने एक भरपूर हाथ पत्नी की गर्दन पर दिया और वह सिर भी अपनी सास की पंक्ति मे जा गिरा।

क्षण-भर उसने तीनों देवियों की फडकती लाशों को देखा। इसके बाद उसने घर में चारों तरफ दृष्टि दौडायी। रसोई मे आग जल रही थी। घी का बड़ा-सा हण्डा भरा धरा था—वह सब उसने छप्पर पर उड़ेल दिया, घर धांय-धाय जलने लगा।

अब वह उसी तलवार को उसी प्रकार कस कर कलाई में थाम्हे बाहर आया। गाव के नर-नारी धाडें मार-मार कर रो रहे थे।

वह चबूतरे पर चढ़ कर इधर-उधर टहलने लगा।

[ ६ ]

अल्ला-हो-अकबर के विकट चीत्कार से गांववालों के कलेजे दहल गए। स्त्रियां और बच्चे भाग कर घरों मे घुस गए। मुगल सेना तलवारें चमकाती हुई धड़धड़ाती गाँव में घुस आयीं। लोग भयभीत होकर भागे। ठाकुर ने

कठोर दृष्टि से एक बार गाव के कायर पुरुषों को देखा। वह एक हुकार भर कर भीमवेग से शत्रुओं पर टूट पडा। सैकडों शस्त्र क्षण भर में उसके घायल शरीरमे धस गए और उसके अग कट कटकर गिरने लगे। वह भी गिरा।

उसने अपनी मुमूर्ष आँखों को एक बार उठाया। उसने देखा—गाव का बच्चा-बच्चा तलवारे ले कर शत्रु-सेना पर टूट पडता है। उसने सतोष की एक सास ली और दम तोड दिया।

वह गाव मुगलों ने जला कर खाक कर दिया। परन्तु जब तक गांव का एक बच्चा भी जिन्दा रहा—तलवार चलाता रहा।

# निदिया लागी

[ भगवतीप्रसाद वाजपेयी ]

कालेज से लौटते समय मैं अक्सर अपने नये बँगले को देखता हुआ घर आया करता। उन दिनों वह तैयार हो रहा था। एक ओवरसियर साहब रोजाना, सुबह-शाम, देख-रेख के लिए आ जाते थे। वे मझले-भैया के सहपाठी मित्रों मे से थे। लम्बा कद, गौर वर्ण, लम्बी नाक—खूबसूरत और मुख पर उल्लास का अभिनव अलोक। गम्भीर भी होते तो प्राय मालूम यही होता कि मुसकरा रहे है।

नाम उनका बेनीमाधव था। और अवस्था ? अवस्था उनकी अब पैतालिस वर्ष से ऊपर जान पडती थी। मिस्त्री और मजदूर, सब मिला कर, कोई पचीस-तीस व्यक्ति काम कर रहे थे। मजदूरों में कुछ स्त्रियाँ भी थी।

एक दिन मैंने देखा छत कूटी जा रही है। कूटने वालो मे स्त्रियाँ ही है अधिकाश रूप से। दो पुरुष भी है, लेकिन वे जरा हटकर, एक कोने मे हैं। स्त्रियाँ छत कूटती हुई एक गाना गा रही है। यों उनका गायन कुछ विशेष मधुर नही है; किन्तु अनेक सम्मिलित स्वरों के बीच मे एक अत्यन्त कोमल स्वर भी है। तभी मै उनके पास जाने को तत्पर हो गया। मुझे देखना था कि वह जो गाना गा रही है और जिसका कठ इतना मधुर है, उसका रूप भी कुछ है या नही। मै मानता हूँ कि यह मेरी दुर्बलता थी; किन्तु उन दिनों मेरी समझ मे यह बात कैसे आती !

एकाएक पहले तो ओवरसियर साहब सामने आ गये। बोले—आ गये छोटे-भैया !

मैंने उनकी ओर देख कर जरा-सा मुसकरा दिया और कहा—जान तो मुझे भी ऐसा ही पडता है।

हँसते हुए उन्होंने तब कहा—लेकिन दर-असल आप आये नही। आप समझते है दुनिया की नजरों मे जो आप यहाँ मौजूद है, इतने मे ही मैं यह मान लूँ कि आप पूरे सोलह-आने-भर आ गये है? और जो कही आप अपना 'कुछ' छोड़ आये हो, तो ?

वे तब इतना कहते-कहते मेरे निकट—बिलकुल निकट आ गये। बोले—जब मैं अपने इजीनियरिग कालेज मे पढता था, तब मै कैसा था, सच जानिए, आपको देख कर जब मुझे उसकी याद आ जाती है, तो जी मसोसने लगता है। तबीअत चाहती है कि अपने को क्या कर डालूँ, जिससे कुछ शान्ति मिले। लेकिन फिर यही सोच कर सन्तोष कर लेता हूँ कि मनुष्य की तृष्णा का अन्त नही है। न आकाश मे, न महासागर के अतल मे, न गिर-गह्वर मे—संसार मे कही भी, कोई ऐसा स्थान नही मिल सकता, जहाँ पहुँच कर मनुष्य कामना से मुक्त हो सके।

बेनी बाबू के मुख पर अगमनीय गम्भीरता की छाप थी, यद्यपि अपने विमल हास से वे उसे छिपाना चाहते थे। मैंने कहा—आप मेरे अध्ययन की चीज है, यह मुझे आज मालूम हुआ।

एक ओर चलते हुए वे बोले—अभी आप को कुछ भी नही मालूम हुआ है।

किन्तु बेनी बाबू की इतनी-सी बात से मेरे मन का कुतूहल अभी शान्त नहीं हो पाया था, इसलिए मैं उनके पीछे-पीछे चल दिया।

घूमते, काम देखते हुए, एक मिस्त्री के पास जा कर वे खड़े हो गये। वह आर्च (Arch) बनाने जा रहा था। बोले—देखो जी मिस्त्री, पत्तियाँ और फूल बनाना ही काफी नही है। टहनी और उसमें उभड़े हुए कांटे भी दिखाने होते हैं। माना कि नकल नकल है, असल चीज वह कभी हो नही सकती; किन्तु असल चीज की जो असलियत है, गुण के साथ दुर्गुण भी, नकल मे यदि उसको स्पष्ट न किया जा सका, तो वह नकल भी नकल नही हो सकती। बनाने मे तुमको अगर दिक्कत हो, तो मैं नमूना दे जा सकता हूँ; लेकिन मेरी तबीअत की चीज अगर तुम न बना सके, तो मै कह नही सकता कि आगे चल कर तुम्हें उसका क्या फल भोगना पड़ेगा।

मिस्त्री वृद्ध था। उसके बाल पक गये थे। उसकी आँखों पर पुरानी चाल का चश्मा चढ़ा हुआ था। बडे गौर से वह बेनी बाबू की ओर देखने लगा, लेकिन उसने कुछ कहा नही। तब बेनी बाबू वहाँ और अधिक ठहर न सके।

अब वे आगन मे एक टब के पास खडे थे। नल का पानी टब मे गिर रहा था। मै थोड़ा पीछे था। जब उनके निकट पहुँचा, तो वे बोले—आपने इस मिस्त्री की आँखों को देखा? वह कुछ कह नही सका था; लेकिन उसकी आँखों ने जो बात कह दी, मै उसे सहन नही कर सका। वह समझता है, मैंने फल भोगने की बात कह के उसको चोट पहुँचाने, उसका अपमान करने, की चेष्टा की है, किन्तु वह नही जानता, जान भी नही सकता, कि मेरी बात का कोई उत्तर न देकर उसने मुझपर कैसा भयकर आघात किया है? एक वह नही, मालूम नही, कितने आदमी आपको ऐसे मिल सकते है, जो मुझे गलत समझते है। आज पन्द्रह वर्षो से, बल्कि और भी अधिक काल मे, मुझे जहाँ-कही भी मकान बनवाने का काम पडा है, मैने इस मिस्त्री को अवश्य बुलाया है। मैने काम के सम्बन्ध मे कभी-कभी तो उसे इतना डाँटा है कि वह रो दिया है, तो भी कभी ऐसा अवसर नही आया कि उसने मुझे तीखा उत्तर दिया हो। उसका वही पुराना चश्मा है, वैसी ही भीतर तक प्रविष्ट हो जाने वाली आखे। उसने कभी मजदूरी मुझसे तय नही की। और कभी ऐसा अवसर नही आया, जब काम समाप्त हो जाने पर, मजदूरी के अतिरिक्त, उसने दस-पन्द्रह रुपये पुरस्कार न प्राप्त किये हों....किन्तु इन सब बातो को अच्छी तरह समझते हुए भी डाँटना तो पडता ही है, क्योंकि उससे कलाकार की सुप्त कल्पना को जागरण मिलता है।

अब बेनी बाबू घूमते-फिरते वही जा पहुँचे, जहाँ स्त्रियाँ छत कूट रही थीं। उन्होंने एकाएक जो हैटधारी हम लोगों को देखा, तो उनका गाना बन्द हो गया। तब मेरे मन मे आया कि इससे तो यही अच्छा था कि हम लोग यहाँ न आते। और कुछ नहीं, तो सगीत का वह मृदुल स्वर तो कानों में पडता। और वह सगीत भी कैसा?—एक दम असाधारण। उसकी टेक तो कभी भूल ही नही सकती। जैसी नन्हीं वैसी ही भोली।—

'निंदिया लागी—मैं सोय गई गुइयाँ!"

बेनी बाबू ने खड़े-खड़े इधर उधर देखा और कहा—देखो इधर, इस तरह नहीं पीटना होता कि चोटों की आवाज का सिलसिला बिगड़ जाय। मुगरी की आवाज, सारी-की-सारी एक बारगी, एक साथ, होनी चाहिये। और देखो, आज इस छत की पिटाई का काम खतम हो जाना चाहिये।

रामलखन बोला—सरकार, आज कैसे पूरा होगा? दिन ही कितना रह गया है।

'बको मत रामलखन! काम नही पूरा होगा, तो पैसा भी पूरा नहीं होगा। समझते हो न। काम का ही दूसरा नाम पैसा है।'

रामलखन चुप रह गया।

बेनी बाबू भी चल दिये। लेकिन चलने के साथ ही पिटाई की आवाज, उसकी धमक, उसकी गति और चूड़ियों की खनक और 'निदिया लागी' का स्वर अतिशय गम्भीर हो गया। मैंने बेनी बाबू से कहा—आप काम लेना खूब जानते हैं।

वे हँसते-हँसते बोले—मै जानता बहुत-कुछ हूँ छोटे-भैया, लेकिन जानना ही काफी नही होता। ज्ञान से भी बढ कर जो वस्तु है, उसको भी तो जानना होता है। और उसे मैं अभी तक जान नहीं सका।

मैंने पूछ दिया—वह क्या?

वे बोले—सत्य का ग्रहण।

मैंने कहा—सिर्फ पहेली न कहिए, उसे समझाते भी चलिए।

वे तब एक पेड के नीचे, सडक पर ही एक ओर, कुर्सियाँ डलवा कर, बैठ गये और बोले—ये स्त्रियाँ, जो यहाँ मजदूरी करने आई हैं, कितने सबेरे घर से चली है और कब पहुँचेंगी! कोई घर में अपने बच्चे को छोड़ आई है, किसी का पति खेत में काम करने गया होगा। किसी के कोई होगा ही नहीं। और काम करते-करते इनको अगर उनकी सुधि आ ही जाती है और काम की गति में क्षणिक मन्दता उत्पन्न हो ही उठती है, तो वह भी आज की हमारी इस सामाजिक व्यवस्था को सहन नही है। और तारीफ यह है कि हम समझ लेते है कि हम बडे ज्ञानी हैं। हम यही देख कर संतोष कर लेते है कि जो स्त्री यहाँ पर मजदूरी कर रही है, हमको सिर्फ उसी से मतलब है, उसी की मजदूरी हम दे रहे हैं; किन्तु हम यह सोचने की जरूरत ही नहीं

समझते कि वह स्त्री अपने जगत् लेकर क्या है। जो बच्चा उसने उत्पन्न किया है, वह भी तो अपने पालन-पोषण का भार अपनी माँ पर रखता है; पर हम लोग वहाँ तक सोचना ही नही चाहते। हमारे स्वार्थो ने सत्य को कितनी निरंकुशता के साथ दबा रखा है।

बेनी बाबू चुप हो गये। एक ओर खुले अम्बर मे, विहगावलियाँ अपने पंखों को फैलाये, नितान्त निर्बन्ध, हँसी-खुशी के साथ, उडी चली जा रही थी। एक साथ हम दोनों उधर देखने लगे। किन्तु बराबर उधर देखने के बदले मैंने एक बार फिर बेनी बाबू को ही देखा। उनके मस्तक के ऊपर चँदोवा खुल आया था। उसमे नन्हें-नन्हे एक-आध बाल ही अवशिष्ट थे। वे अब साध्य आलोक मे चमक रहे थे। उनकी खुली आँखे यद्यपि चश्मे के भीतर थी, तो भी मुझे प्रतीत हुआ, जैसे वे कुछ और भी फैल गई है। इसी क्षण वे बोले—अब यह काम और आगे न करूँगा। लेकिन

उनका यह वाक्य अधूरा रह गया। जान पडा, वे कोई निश्चय कर रहे है और रुक-रुक जाते है। रुक इसलिए नही जाते कि रुकना चाहते है। रुक इसलिए जाते हैं कि रुकना नही चाहते।

तभी वे फिर बोले—तुम उस बात को अभी समझ नही सकोगे, लेकिन ऐसी बात नही है कि उस बात के समझने की तुम्हारी क्षमता कुन्द है। देखता हूँ, तुम विचारशील हो। और तभी मैं कहना भी चाहता हूँ कि आदमी तो अपने विश्वासों को लेकर खडा है, लेकिन जो आदमी अपने विश्वासों को लेकर भी नही खडा होता, वह भी क्या आदमी है ? वह आदमी नही है। वह पशु है—पशु। लेकिन कैसे कहूँ कि पशु भी अपने विश्वासों के विरुद्ध खडा हो सकने वाला प्राणी है। वह तो. . . वह तो, बल्कि अपनी प्रवृत्तियों का ही स्वरूप होता है। और वह मनुष्य ? छि: इससे भी अधम क्या कोई स्थिति है !

मैंने देखा, यह वातावरण तो अब अतिशय गम्भीर हो गया है ! और उन दिनों इस तरह की निरी गम्भीरता मुझे जरा कम पसन्द आती थी; बल्कि साथी लोग जब ऐसे व्यक्तियों का मजाक उडाते, तो उस दल में मैं भी सम्मिलित हो जाया करता था। बात यह थी कि उस समय एक दूसरा दृष्टिकोण हम लोगों के सामने रहता था। हम सब यही मानते थे कि जीवन तो एक हँसी-खेल की चीज है। सर्वथा अनिश्चित और चरम अकल्पित जीवन

के थोडे-से दिनों को रोना रोने, या सोच-विचार मे निपीडित-निर्जीव कर डालने मे कौन-सी महत्ता है ?

इसीलिए मैने कह दिया—इन लोगों के गाने मे बीच का यह—हाँ यह स्वर मुझे बडा कोमल लगता है।

निमेषमात्र मे, सम्यक् बदल कर—

जाओ नजदीक से जाकर सुन आओ। हैट यही रख जाओ। फिर भी अगर गाना बन्द कर दे, तो कहना—काम में हर्ज नही होना चाहिए; क्योंकि गाने के साथ छत कूटने का काम अधिक अच्छा होता है, ऐसा मै सुनता आया हूँ।—बेनी बाबू ने मुसकराते हुए कहा।

मै चला गया। चुपचाप बहुत धीरे-धीरे, पैर सम्हाल-सम्हाल कर। तो भी उनको मालूम हो ही गया। काम की गति मे कुछ तीव्रता जरूर जान पडी, किन्तु गाना बन्द हो गया।

मैने कहा—तुम लोगों ने गाना क्यों बन्द कर दिया ?

खिलखिल के कुछ मदिर कलहास। कभी इधर—कभी उधर।

किसी ने अपनी सखी से कहा, उसे जरा-सा धक्का देकर—गा री पत्ती, चुप क्यो हो गई ?

'तू ही क्यो नही गाती ? छोटे-भैया के सामने . .

'हूँ, बडी लाजवन्ती बनी है ! जैसे दुलहे का मुह ही न देखा हो !

मैंने कहना चाहा—लडो मत। मै चला जाता हूँ। लेकिन मै कुछ कह न सका। चुपचाप चला आया। चला तो आया; किन्तु उस खिलखिल और अपने सामने गाने से लजानेवाली उस पत्ती को मैंने फिर देखने की चेष्टा नही की।

कैसे उल्लास के साथ आया था, किन्तु कैसा भीषण द्वन्द्व लेकर चल दिया।

बेनी बाबू ने बडे प्यार से पूछा—कह आओ।

मैने कहा—क्या कह जाऊँ ? वही बात हुई। उन लोगों ने गाना बन्द कर दिया।

'फिर तुमने वह बात नही कही।'

'उसे मे कह नही सका।'

'तो यह कहो कि तुम खुद ही लजा गये !

मैं चुप रहा। जिसने कभी चोरी नही की, जो यह भी नही जानता कि चोरी की कैसे जाती है, वह चीज क्या है, यदि वह कभी उसके दलदल मे पड जायगा, तो उससे सफाई के साथ निकल ही कैसे सकेगा? वह तो निश्चय-पूर्वक फँस जायगा। वही गति मेरी हुई। क्या मैं जानता था कि बेनी बाबू मुझे ऐसी जगह ले जायँगे, जहाँ पहुँच कर फिर मुक्ति का कोई मार्ग ही दृष्टिगत न होगा?

बेनी बाबू बोले—अच्छा, एक काम कर आओ। रामलखन से कहना, अगर आज यह काम किसी तरह पूरा होता न दीख पडे, तो कल ही पूरा कर डालना ठीक होगा। बेनी बाबू से मैंने कह दिया है कि मजदूरो से उतना ही काम लिया जाय, जितना वे कर सके।

मैं उनकी ओर देखता रह गया। मेरे मन मे आया—यह आदमी है कि देवता।

मुझे अवाक् देख कर उन्होंने पूछा—सोचते क्या हो?

मैंने कहा—कुछ नहीं। इतने दिन से आप का परिचय प्राप्त है; किन्तु कभी ऐसा अवसर नही आया कि आप को इतने निकट से देख पाता।

वे बोले—यह सब कोई चीज नही है छोटे-भैया! न्याय और सत्य से हम कितने दूर रहते है, शायद हम खुद नही जानते अच्छा जाओ, जो काम तुम्हें दिया गया है, उसको पूरा तो कर आओ।

मैं फिर उसी छत पर जा पहुँचा; पर अब की बार मैंने देखा, गान चल रहा है। लेकिन एक ही गाना तो दिन-भर चल नही सकता। तो भी मुझे उसी गाने के सुनने की इच्छा हो आई। साथ ही मैंने यह भी सोच लिया कि अभी कुछ समय पहले बेनी बाबू ने कहा था, मनुष्य की कामनाओं का अन्त नहीं है।

मैंने जो रामलखन को बुलवाया, तो वह सिटपिटा गया। बोला—छोटे सरकार, क्या हुक्म है?

मैंने कहा—बेनी बाबू क्या तुम लोगों के साथ कुछ ज्यादा सख्ती से काम लेते है?

वह चुप ही बना रहा, सत्य-कृष्ण कुछ भी नही कह सका। तब मैंने समझ लिया, डर के कारण वह उनके विरुद्ध कुछ कहना नही चाहता, इसी-

लिए चुप है; लेकिन जब मैंने कहा—मैं उनसे कुछ कहूँगा नही। मैं तो सिर्फ असल बात जानना चाहता हूँ। बिलकुल निडर होकर बतलाओ।

तब उसने कहा—काम सख्ती से लेते है, तो मजदूरी भी तो दो पैसा ज्यादा और वक्त पर देते है। ऐसे मालिक मिले तो मैं जिन्दगी-भर उनकी गुलामी करूँ।

मैंने कहा—तुम ठीक कहते हो। उन्होंने मुझसे कहला भेजा है कि अगर काम आज नही पूरा होता है, तो कल ही पूरा कर डालना। ज्यादा तकलीफ उठाने की जरूरत नही है।

रामलखन बोला—पर छोटे भैया, उन्होंने पहले ही बहुत सोच-समझ कर हुक्म दिया था। काम अगर आज पूरा न होता, तो कूटने के लिए चूना कल हम लोगो को इस हालत मे न मिलता। वह सूख जाता। तब उस पर कुटाई ठीक तरह से कैसे होती? इसके सिवा कल गुडियों का त्योहार है—छुट्टी का दिन है। मैंने पीछे जो सोचा, तो मुझे इन सब बातों का ख्याल आ गया। काम पूरा हो जायगा। बहुत-कुछ तो हो भी गया है। थोडा-सा ही बाकी रह गया है। वह भी शाम होते-होते पूरा हो जायगा। तकलीफ तो थोडी हुई—किसी-किसी के हाथों मे छाले पड गये, लेकिन यह बात आप उनसे जाकर न कहे सरकार, इतनी बात मेरी भी रख लें।

रामलखन की बात मान कर सचमुच मैंने बेनी बाबू से यह नही कहा कि कुछ स्त्रियों के हाथों में छाले पड़ गये हैं।

किन्तु उसी दिन, सायकाल।

एक ओर जीने की दीवार गिर गई। छुट्टी हो गई थी। मजदूर लोग इधर-उधर से आ-आकर जाने लगे थे कि अररर धम् का भीषण स्वर और एक क्षीण 'आह!'

लोग दौड पड़े। लोग गिने भी गये। सब मिलाकर उन्तीस आदमी आज काम पर थे, लेकिन है केवल सत्ताइस!

—तो दो आदमी दब गये, क्या?

—हाँ, यह हलका स्वर जो आ रहा है! यह!—यह!

ईटे उठाई जाने लगी, तो एक स्त्री ने कहा—हाय ! पत्ती है—पत्ती। तभी मैं सोच रही थी—वह दीख नही पडती, शायद आगे निकल गई ! हाय यह तो चल बसी !

उससे कौन कहता कि हाँ, वह आगे निकल गई !

लेकिन एक क्षीण स्वर तब भी ध्वनित होता रहा !

—अरे और उठाओ ईटो को। हां, इस खजड को। अभी एक आदमी और भी तो है।

एक साथ कई आदमियो ने मिल कर एक दीवार के टुकडे को उठाया। वह ईटों के ऊपर गिरा था और बीच मे थोडी जगह शेष रह गई थी। उसी मे मुडा हुआ अचेत मिला गिरिधर !

कुछ दिनो मे गिरिधर अच्छा हो गया। उसकी एक रीढ टूट गई थी; लेकिन उसका जीवन उसकी रीढ से अधिक बलिष्ट जो था।

उस बँगले को, फिर आगे, बेनी बाबू नही बनवा सके। कुछ दिनों तक काम बन्द रहा ओर वे बीमार पड गये।

मनुष्य का यह जीवन क्या इतना अस्थिर है ! क्या वह फूल के दल से भी अधिक मृदुल है ? क्या वह छुई-मुई है ? उन दिनो मैं यही सोचता रहा था। वे बीमार थे, और उनकी बीमारी बढती जाती थी। मैं देख रहा था, शायद बेनी बाबू तैयारी कर रहे है ! लेकिन एक दिन मैंने उन्हे दूसरे रूप में देखा। मैंने देखा कि मृत्यु को उन्होने मसल डाला है, पीस डाला है ! वह छटपटा रही है ! वह भाग जाना चाहती है !

वे एक पलँग पर लेटे हुए थे, बहुत धीरे धीरे बाते कर रहे थे। उनके पास एक नौजवान बैठा हुआ था। वह मौन था और बेनी बाबू उससे कुछ पूछ रहे थे। उसी क्षण मैं पहुँच गया। वे उठने को हुए, तो नौकर ने उन्हें उठा दिया और उनके पीछे तकिये लगा दिये। पहले आखों पर चश्मा नहीं था; अब उन्होंने चश्मा चढा लिया।

संकेत पाकर मैं उनके पास ही कुरसी डाल कर बैठ गया था।

वे बोले—सुनते हो मुल्लू, मैं तुमको रोने नही दूंगा। रोने दूं, तो मैं अपने को खो दूगा। लेकिन मैं इतना सस्ता नहीं हूँ। मैं मरना नही चाहता, इसीलिए मैं तुमको प्रसन्न देखना चाहता हूँ। बतलाओ, तुम किस तरह

से प्रसन्न हो सकते हो ? मै और साफ कर दूं ? मैं तुमको कुछ देना चाहता हूँ। बोलो, तुम कितने रुपये पाकर खुश हो सकते हो ? लेकिन तुम यह सोचने की भूल न करना कि वे रुपये तुम्हारी स्त्री की कीमत है ! एक स्त्री—एक नवयुवती, एक सुन्दरी—को, क्या रुपयों से तोला जा सकता है ? छि. यह तो एक मूर्खता की बात है—जंगलीपन की। लेकिन मैंने अभी तुमको बतलाया न, मैं तुमको खुश करना चाहता हूँ।

—ओह 'एक नवयुवती—एक सुन्दरी !'

—तो क्या पत्नी सुन्दर थी ?

—तो उसका कठ ही कोमल न था, वरन्

बेनी बाबू बोले—मै जानता हूं, तुम कुछ कहोगे नही। अच्छा, तो मैं ही कहे देता हूँ—उसके बच्चे की परवरिश के लिए, दस रुपये हर महीने मुझसे बराबर ले जाया करना ! समझे ! यह लो दस रुपये ! आज पहली तारीख है। हर महीने की पहिली तारीख को ले जाया करना।

जेब से नोट निकाल कर उन्होंने मुल्लू के आगे फेंक दिया। मुल्लू तब कितना खुश था इसको मैंने जाना। किन्तु बेनी बाबू ने जितना-कुछ जाना, उसको मैं न जान सका।

मुल्लू जब छलकते आनन्दाश्रुओं के साथ चल दिया, तो बेनी बाबू बोले—मेरा खयाल है, अब यह खुश रहेगा। क्यों ? तुम क्या सोचते हो ?

मै चकित था, प्रतिहत था, अभिभूत भी था, तो भी मैंने कह दिया—आपने यह क्या किया ?

'ओह तुम मुझसे पूछते हो, छोटे भैया !—यह क्या किया ! यह मैंने अपने को भुलाने के लिए किया है ; क्योंकि मनुष्य अपने को भुलावे में रखने का अभ्यासी है ! मैंने देखा—मै एक भूल कर रहा हूँ !—मै मृत्यु को बुला रहा हूँ। तब मैंने सोचा—मै ऐसी भूल नहीं करूँगा, जिसमें अपने आपको भी मैं भुला सकूं ! जीवन मे एक ऐसा क्षण भी आता है, जब हमको अपने-आपको भुलाना पडता है। यह मेरा ऐसा ही क्षण है। लेकिन यह मेरी भूल नहीं है। यह तो मेरा नवजीवन है—जागरण।'

* * *

यह कथा तो यहीं समाप्त हो गई है। किन्तु इस कथा के प्राण मे जो अन्तर्कथा है उसी की बात कहता हूँ। उपर्युक्त घटना के पीछे कुछ वत्सर और जुड गये हैं। यह बँगला अब मुझे रहने के लिए दिया गया है। मै अब अकेला ही इसमें रहता हूँ। कई सहस्र पुस्तकों के महत् ज्ञान से आवृत मैं—लोग कहते हैं—प्रोफेसर हूँ। जीवन और जगत् का तत्वदर्शी। लेकिन मै अपनी समस्या किससे कहूँ?—अपना अन्तर खोलकर किसको दिखलाऊँ? बच्चे सुनें तो हँसे—बीबी सुने तो कहे—पागल हो गये हो!

कभी-कभी रात के घोर सन्नाटे मे स्वप्नाविष्ट-सा मै कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ सुनने लगता हूँ। कोई खिल-खिल हँस रही है। कोई धक्का देकर कह रही है—गा री पतुरी! और चूरियाँ खनक उठती है, छत कुटन लगती है और एक कोमल—अत्यन्त कोमल गायन स्वर फूट पडता है—निदिया लागी

और उसके हाथों मे जो छाले पड गये है वे वहाँ से उठकर मेरे हृदय से आकर चिपक गये हैं

# अपना-अपना भाग्य

[ जैनेन्द्रकुमार ]

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सडक के किनारे की एक बेंच पर बैठ गये।

नैनीताल की सध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से, भाप-से बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अँधियारी से रँगकर कभी वे नीले दीखते, कभी सफेद और फिर देर मे अरुण पड़ जाते, वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारे पोलोवाला मैदान फैला था। सामने अँगरेजो का एक प्रमोद-गृह था, जहाँ सुहावना, रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व मे था वही सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तिया अपने सफेद पाल उडाती हुई एक दो अँगरेज यात्रियों को लेकर, इधर-से-उधर और उधर-से-इधर खेल रही थी। कही कुछ अँगरेज एक-एक देवी सामने प्रति-स्थापित कर, अपनी सुई सी शक्ल की डोंगियों को, मानो शर्त बाँधकर सरपट दौडा रहे थे। कही किनारे पर कुछ साहब अपनी बसी डाले, सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली-चिन्तन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लॉन मे बच्चे किलकारियाँ भरते हुए हाकी खेल रहे थे शोर, मार-पीट, गाली-गलौज भी जैसे खेल का ही अश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणो का उद्देश्य बना, वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगाकर मानो खतम कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का खयाल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की सम्पूर्ण सचाई के साथ जीवित थे।

सडक पर से नर-नारियों का अविरल प्रवाह आ रहा था और जा रहा था। उसका न ओर था, न छोर। यह प्रवाह कहाँ जा रहा था, और कहाँ से आ रहा था, कौन बता सकता है? उस उम्र के, सब तरह के लोग उसमें थे। मानो मनुष्यता के नमूनो का बाजार सजकर सामने से इठलाता निकला चला जा रहा हो।

अधिकार-गर्व मे तने अँगरेज उसमे थे और चिथडो से सजे घोडों की बाग थामे, वे पहाडी उसमे थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचलकर शून्य बना लिया है और जो बडी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये है।

भागते, खेलते, हँसते, शरारत करते, लाल-लाल अगरेज़-बच्चे थे और पीली-पीली आँखे फाडे, पिता की उँगली पकडकर चलते हुए अपने हिन्दुस्तानी नौनिहाल भी थे।

अँगरेज़ पिता थे, जो अपने बच्चो के साथ भाग रहे थे, हँस रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुजुर्गी को अपने चारों तरफ लपेटे धन सम्पन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अँगरेज-रमणियाँ थी; जो धीरे नही चलती थी, तेज चलती थी। उन्हे न चलने में थकावट आती थी, न हँसने मे मौज आती थी। कसरत के नाम पर घोड़े पर भी बैठ सकती थी, और घोडे के साथ-ही-साथ, ज़रा जी होते ही, किसी-किसी हिन्दुस्तानी पर कोडे भी फटकार सकती थीं। वह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियो मे नि.शंक, निरापद इस प्रवाह मे मानो अपने स्थान को जानती हुई, सडक पर से चलती जा रही थी।

उधर हमारी भारत की कुल-लक्ष्मी सड़क के बिलकुल किनारे, दामन बचाती और सम्हालती हुई, साडी की कई तहों मे सिमट-सिमटकर, लोक-लाज-स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों मे छिपाकर सहमी-सहमी धरती मे आख गाडे, क़दम-क़दम बढ़ रही थी।

इसके साथ ही भारतीयता का गर्व और नमना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरचकर बहा देने की इच्छा करनेवाले अगरेजी-दा पुरुषोपम भी थे, जो नेटिवों को देखकर मुह फेर लेते थे और अँगरेज को देखकर आँखें बिछा देते थे और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकडकर चलते थे—मानो भारत-

भूमि को इसी अकड के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हे अधिकार मिला है

( २ )

घण्टे-के-घण्टे सरक गये। अन्धकार गाढा हो गया। बादल सफेद होकर जम गये। मनुष्यो का वह ताता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्का-दुक्का आदमी सडक पर छतरी लगाकर निकल रहा था। हम वही-के-वही बैठे थे। सर्दी-सी मालूम हुई। हमारे ओवर-कोट भीग गये थे।

पीछे फिरकर देखा। वह लाल बर्फ की चादर की तरह बिलकुल स्तब्ध और सुन्न पडा था।

सब ओर सन्नाटा था। तल्लीताल की बिजली की रोशनियाँ दीपमालिका-सी जगमगा रही थी। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थी और दर्पण का काँपता हुआ, लहरे लेता हुआ, वह जल प्रतिबिम्बो को सौ गुना, हजार गुना करके, उनके प्रकाश को मानो एकत्र और पुजीभूत करके व्याप्त कर रहा था। पहाड़ो के सिर पर की रोशनियाँ तारो-सी जान पडती थी।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर सबको ढँक दिया। रोशनियाँ मानो मर गई। जगमगाहट लुप्त हो गई। वह काले-काले भूत-से पहाड भी इस सफ़ेद पर्दे के पीछे छिप गये। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानो यह घनीभूत प्रलय थी। सब कुछ इसी घनी गहरी सफ़ेदी मे दब गया। एक शुभ्र महासागर मे फैलकर संसृति के सारे अस्तित्व को डुबो दिया। ऊपर-नीचे चारो तरफ, वह निर्भेद्य, सफेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा हमने कभी नही देखा था। वह टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिलकुल निर्जन-चुप था। वह प्रवाह न जाने किन घोसलों मे जा छिपा था।

उस बृहदाकार शुभ्र शून्य मे, कहीं से, ग्यारह बार टन्-टन् हो उठा। जैसे कही दूर कब्र में से आवाज आ रही हो।

हम अपने-अपने होटलो के लिए चल दिये।

( ३ )

रास्ते मे दो मित्रो का होटल मिला। दोनों वकील-मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढे। हमारा होटल आगे था।

ताल के किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवर-कोट तर हो गये थे। बारिश नही मालूम होती थी, पर वहाँ ऊपर-नीचे हवा के कण-कण में बारिश थी। सर्दी इतनी थी कि सोचा, कोट पर एक कम्बल और होता तो अच्छा होता।

रास्ते मे ताल के बिलकुल किनारे एक बेंच पडी थी। मै जी मे बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुँचकर इन भीगे कपड़ो मे छुट्टी पा, गरम बिस्तर मे छिपकर सो रहना चाहता था, पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी, कब थमेगी—इसका पता न था। और वह कैसी क्या होगी—इसका भी कुछ अन्दाज न था। उन्होंने कहा—आओ, जरा यहा बैठें।

हम उस चूते कुहरे मे रात के ठीक एक बजे तालाब के किनारे उस भीगी बर्फ-सी ठडी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गये।

५-१०-१५ मिनट हो गये। मित्र के उठने का इरादा न मालूम हुआ। मैने खिसियाकर कहा—

"चलिए भी।"

"अरे ज़रा बैठो भी।

हाथ पकडकर जरा बैठने के लिए अब इस जोर से बैठा लिया गया तो और चारा न रहा—लाचार बैठे रहना पडा। सनक से छुटकारा आसान न था, और यह जरा बैठना जरा न था, बहुत था।

चुपचाप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले—

"देखो वह क्या है?"

मैंने देखा—कुहरे की सफ़ेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली-सी मूरत हमारी तरफ बढी आ रही थी। मैंने कहा—"होगा कोई।"

तीन गज़ की दूरी से देख पड़ा, एक लड़का सिर के बडे-बडे बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर है, नगे सिर। एक मैली-सी कमीज़ लटकाये है। पैर उसके न जाने कहा पड़ रहे है, और वह न जाने कहाँ जा

रहा है—कहाँ जाना चाहता है? उसके कदमो मे जैसे कोई न अगला है, न पिछला है; न दायाँ है, न बायाँ है।

पास की चुगी की लालटेन के छोटे-से प्रकाश-वृत्त मे देखा -कोई दस बरस का होगा। गोरे रग का है, पर मैल से काला पड़ गया है। आँखे अच्छी बडी, पर रूखी है। माथा जैसे अभी से झुरियाँ खा गया है

वह हमे न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नही देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर, चारों तरफ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाकी दुनिया। वह बस अपने विकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज दी—"ए!"

उसने जैसे जागकर देखा और पास आ गया।

"तू कहाँ जा रहा है रे?"

उसने अपनी सूनी आँखे फाड दी।

"दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है?"

बालक मौन मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर, खडा रहा।

"कहाँ सोयेगा?"

"यही कही।"

"कल कहाँ सोया था?"

"दूकान पर।"

"आज वहाँ क्यो नही?"

"नौकरी से हटा दिया।"

"क्या नौकरी थी?"

"सब काम। एक रुपया और जूठा खाना।"

"फिर नौकरी करेगा।"

"हाँ।"

"बाहर चलेगा?"

"हाँ।"

"आज क्या खाना खाया?"

"कुछ नही।"

"अब खाना मिलेगा?"

'नही मिलेगा।"

"यो ही सो जायगा?"

"हाँ।"

"कहाँ?"

"यही, कही।"

"इन्ही कपडों से?"

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आँखें मानो बोलती थी—"यह भी कैसा मूक प्रश्न।"

"माँ-बाप है?"

"है।"

"कहाँ?"

"१५ कोस दूर गाँव मे।"

"तू भाग आया?"

"हाँ।"

"क्यों?"

"मेरे कई छोटे भाई-बहन है—सो भाग आया, वहाँ काम नही, रोटी नही। बाप भूखा रहता था, और मारता था। माँ भूखी रहती थी, और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का। मुझसे बड़ा था। दोनों साथ यहाँ आये। वह अब नही है।"

"कहाँ गया?"

"मर गया।"

"मर गया?"

"हाँ, साहब ने मारा, मर गया!"

"अच्छा, हमारे साथ चल।"

वह साथ चल दिया। लौटकर हम वकील-दोस्तों के होटल में पहुँचे

"वकील साहब!"

वकील लोग, होटल के ऊपर के कमरे से उतरकर आये। काश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोज़े चढ़े पैरों मे चप्पल थी। स्वर में हल्की-सी झुँझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

"आ-हा फिर आप !—कहिए।"

"आपको नौकर की जरूरत थी न ?—देखिए यह लडका है।

"कहाँ से ले आये ?—इसे आप जानते हैं ?

"जानता हूँ—यह बेईमान नही हो सकता।"

"अजी ये पहाडी बडे शैतान होते है। बच्चे-बच्चे मे गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं—उठा लाये कही से—लो जी, यह नौकर लो।"

"मानिए तो, यह लडका अच्छा निकलेगा।"

आप भी.        जी, बस खूब है। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाय।"

"आप मानते ही नही, मैं क्या करूँ ?"

"माने क्या खाक ?—आप भी . .जी अच्छा मज़ाक करते हैं। अच्छा अब हम सोने जाते है।"

और वह चार रुपये रोज़ के किरायेवाले कमरे मे सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गये।

( ४ )

वकील साहब के चले जाने पर होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब म हाथ डालकर कुछ टटोला। पर झट कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर मेरी ओर देखने लगे।

"क्या है ?"

"इसे खाने के लिए कुछ—देना चाहता था", अँगरेजी मे मित्र ने कहा—"मगर, दस-दस के नोट है।"

"नोट ही शायद मेरे पास है, देखू ?"

सचमुच मेरे पाकिट में भी नोट ही थे। हम फिर अँगरेजी में बोलने लगे। लडके के दाँत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा—"तब ?"

मैंने कहा—"दस का नोट ही दे दो।" सकपकाकर मित्र मेरा मुह देखने लगे—"अरे यार ! बजट बिगड जायगा। हृदय में जितनी दया है, पास मे उतने पैसे तो नहीं है

"तो जाने दो, यह दया ही इस जमाने में बहुत है।"—मैंने कहा।

मित्र चुप रहे। जैसे कुछ सोचते रहे। फिर लड़के से बोले—"अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना। वह 'होटल डि पब' जानता है। वहीं कल १० बजे मिलेगा?"

"हाँ......कुछ काम देंगे, हुजूर!"

"हाँ-हाँ, ढूंढ दूंगा।"

"तो जाऊँ?"

"हाँ", ठंढी साँस खींचकर मित्र ने कहा—"कहाँ सोयेगा?"

"यहीं कहीं; बेंच पर, पेड़ के नीचे किसी दूकान की भट्ठी में।"

बालक फिर उसी प्रेत-गति से एक ओर बढ़ा। और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी—हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा—"भयानक शीत है। उसके पास! कम—बहुत कम कपड़े......!"

"यह संसार है यार!"—मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनाई—"चलो पहले बिस्तर में गर्म हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।"

उदास होकर मित्र ने कहा—"स्वार्थ!—जो कहो लाचारी कहो, निठुराई कहो, या बेहयाई!"

* * *

दूसरे दिन नैनीताल- स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलारे का बेटा वह बालक निश्चित समय पर हमारे 'होटल डि पब' में नहीं आया। हम अपनी नैनीताल सैर खुशी-खुशी खतमकर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाये बैठे रहने की जरूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही थे कि यह समाचार मिला कि पिछली रात, एक पहाड़ी बालक सड़क के किनारे पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुंह पर छाती, मुट्ठी और पैरों पर, बरफ की हलकी-सी चादर चिपक गई थी मानो दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठण्डे कफन का प्रबन्ध कर दिया था

सब सुना और सोचा—अपना अपना भाग्य

# दुःख का अधिकार

## [ यशपाल ]

पोशाक मनुश्य को विमन्न श्रेणियों में बांटने वाली सीमा है। पोशाक ही समाज मे मनुष्य का अधिकार और उसका दर्जा निश्चित करती है। वह हमारे लिये अनेक बद दरवाजे खोल देती है। परन्तु कभी ऐसी भीं परिस्थिति आ जाती है जब हम नीचे झुककर मनुष्य की निचली श्रेणियों की अनुभूति को समझना चाहते है; उस समय यह पोशाक ही बन्धन और पैर की बेडी बन जाती है। जैसे वायु की लहरे कटी हुई पतग को सहसा भूमि पर नही गिर जाने देती; उसी प्रकार हमारी पोशाक, खास परिस्थितियों मे हमे झुकने से रोके रहती है

बाजार मे फुटपाथ पर कुछ ख़रबूजे डलिया में और कुछ ज़मीन प फैलाये एक अधेड उमर की औरत बैठी रो रही थी। खरबूजे बिक्री के लिये थे परन्तु उन्हे ख़रीदने के लिये कोई कैसे आगे बढता, जब उन्हे बेचने वाली कपडे से मुंह छिपाये सिर को घुटनो पर रक्खे फफक-फफककर रो रही थी !

आस-पास की दुकानों के पटडो पर बैठे—या नीचे खड़े आदमी घृणा से उसी के सम्बन्ध मे ज़िकर कर रहे थे। उसका रोना देख मनमें एक व्यथा सी उठी, पर उसके रोने का कारण जानने का उपाय ?

यह पोशाक भी व्यवधान बन कर खडी हो गई। घृणा से एक तरफ थूकते हुए एक आदमी ने कहा—"क्या ज़माना है ! जवान लडके को मरे एक दिन नहीं बीता और यह बेहया दुकान लगा के बैठी है। " अपनी दाढ़ी खुजलाते हुए दूसरे साहब कह रहे थे—"अरे, जैसी नियत होती है, वैसी ही अल्हा बरकत भी देता है !"

एक तरफ कुछ दूर खडे हुए एक आदमी ने दियासलाई से कान खुजलाते हुए कहा—"अरे, इन लोगों का क्या? यह कमीने लोग टुकडों पर जान देते हैं। इनके लिये बेटा-बेटी खसम-लुगाई, धर्म-ईमान, सब रोटी का टुकडा है।"

परचन की दुकान पर बैठे लाला जी ने कहा—"अरे भाई, उनके लिये मरे-जिये का कोई मतलब न हो, पर दूसरे के धर्म का तो ख्याल करना चाहिये! जवान बेटे के मरने का तेरह दिन का सूतक होता है और यह यहाँ सडक पर बाज़ार में आ खरबूज़े बेचने बैठी है! हज़ार आदमी आते हैं, जाते है। कोई क्या जानता है कि इसके घर में सूतक है। कोई इसके खरबूजे खा ले, तो उसका इमान-धर्म क्या रहेगा क्या अंधेर है।"

*　　　*　　　*

पास-पडोस मे पूछने पर जान पडा—उसका तेइस बरस का जवान लडका था। उसकी एक बहू है और एक पोता-पोती। शहर के पास डेढ बीघा भर ज़मीन में कछियारी करके वह अपना निर्वाह करता था। खरबूजों की डलिया बाज़ार मे पहुँचाकर कभी लडका सौदे के पास बैठता, कभी माँ! परसों के रोज सुबह मुह अँधेरे लडका बेलों मे से पके खरबूजे चुन रहा था। गीली मेड की तरावट मे विश्राम करते हुए साँप पर पैर पडने से साँप ने लडके को काट खाया।

माँ बावली होकर ओझा बुला लाई। झाड़ना-फूंकना हुआ। नागदेव की पूजा हुई। पूजा मे दान-दक्षिणा चाहिये, घर में जो कुछ आटा और अनाज था, दान-दक्षिणा में उठ गया। माँ, बहू और पोते "भगवाना" से लिपट-लिपट कर रोये। पर भगवाना जो एक दफ़े चुप हुआ तो फिर न बोला। सर्प के विष से उसका सब बदन काला पड गया था।

ज़िदा आदमी नंगा भी रह सकता है, परन्तु मुर्दे को नंगा कैसे विदा किया जाय। उसके लिये तो बजाज की दुकान से नया कपड़ा लाना ही होगा। चाहे उसके लिये माँ के छन्नी-ककना ही क्यों न गिरवी रखने पड़ें।

*　　　*　　　*

भगवाना चला गया और घर में जो कुछ चूनी-भूसी थी, सो उसे विदा करने मे चला गई। बाप नही रहा तो क्या। लड़के सुबह उठते ही भूख

बिलबिलाने लगे। दादी ने उन्हे खाने को खरबूजे दिये, लेकिन बहू को क्या दे? उसका बदन बुखार से तवे की तरह तप रहा था, आज बेटे के बिना उसे दुअन्नी-चवन्नी कौन उधार देगा।

रोते-रोते आँखे पोंछते बुढिया भगवाना के बटोरे हुए खरबूज़े डलिया में समेटकर बाजार को चली। और चारा ही क्या था।

वह आई थी ख़रबूज़े बेचने का साहस कर, परन्तु चादर से सिर लपेटे सिर को घुटनों पर टिकाये, फफक-फफककर रो रही थी।

*  *  *

"कल जिसका बेटा चल बसा, आज वह बाजार में सौदा बेचने चली है। हाय रे पत्थर का दिल।" उसके दु ख का अन्दाजा लगाने के लिये पिछले साल अपने पड़ोस मे पुत्र की मृत्यु से दुखी माता की बात सोचने लगा... जो पुत्र की मृत्यु के बाद पन्द्रह दिन तक पलँग से उठ नही सकी थी। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट बाद जिसे पुत्र-वियोग से मूर्च्छा आ जाती थी और मूर्च्छा न आने की अवस्था मे आँखो से आँसू न रुकते थे। दो-दो डाक्टर हरदम सिरहाने बैठे रहते थे। हरदम सिर पर बरफ रक्खी जाती।...शहर भर के लोगों के मन उस पुत्र-शोक मे द्रवित हो उठे थे।

जब मन को सूझ का रास्ता नही मिलता, तो बेचैनी से कदम तेज़ हो जाते हैं। उसी हालत मे नाक ऊपर उठाये, राह चलतों से ठोकर खाता, मैं चला जा रहा था यह सोचता हुआ—"शोक करने के लिये, ग़म मनाने के लिये भी सहूलियत चाहिये और दु खी होने का भी एक अधिकार होता है

# शान्ति हँसी थी

[ अज्ञेय ]

"जानकीदास मुजरिम, तुम पर जुर्म लगाया जाता है कि तुमने तारीख़ १४ दिसम्बर को शाम के आठ बजे हालीउड पार्क के दरवाज़े पर दगा किया, और कि तुम्हारी रोजी का कोई जरिया नही है। बोलो, तुम्हे जवाब मे कुछ कहना है ?"

जवाब के बदले जानकीदास को टुकर-टुकर अपनी ओर देखता पाकर न जाने क्यों मजिस्ट्रेट—हाँ, मजिस्ट्रेट—पसीज उठे। उन्होंने कहा— "जो कुछ तुम्हे ज़वाब मे कहना हो सोच लो। मै तुम्हे पाँच मिनट की मोहलत देता हूँ।"

*     *     *

पाँच मिनट।

जानकीदास के बज्राहत मन को, मानो कोडे की चोट-सा, मानो बिच्छू के डंक-सा यह एक फ़िक़रा काटने लगा, बताने की वह फिजूल कोशिश करने लगा—पाँच मिनट !"

पाँच मिनट—

जैसे नदी के किनारे पर पडा हुआ कछुआ, पास कही खटका सुनकर, तनिक-सा हिल जाता है और फिर वैसा ही रह जाता है लोंदा-का-लोंदा, वैसे ही जानकीदास के मन ने कहा—"शान्ति हँसी थी" और रह गया।

पाँच मिनट—

कुछ कहना है अवश्य, सफ़ाई देनी है अवश्य

पाँच मिनट...

शान्ति हँसी

कब ? कहाँ ? क्यों हँसी थी ? और कौन है वह, क्यों है, मुझे क्या है उससे ?

पाँच मिनट

उसे धीरे-धीरे याद-सा आने लगा किन्तु याद की तरह नही। बुखार के बुरे सपनों की तरह !

*

शान्ति ने रोटी उसके हाथ मे थमाकर उसी मे भाजी डालते-डालते कहा था—"इस वक्त तो खा लेते है, उस जून मेरी एकादशी है।"

उसने पूछा था—"क्यों ?"

"क्यों क्या ? तुम्हे खिला दूगी—"और हँस दी थी।

उस जून के लिए रोटी नही है, यह कहने के लिये हँस दी थी।

दोपहर मे, सडकों पर फिरता हुआ जानकीदास सोच रहा था, इतनी बडी दुनियाँ मे, इतने कामों से भरी हुई दुनियाँ मे, क्या मेरे लिये कोई भी काम नही है ? वह पढा-लिखा था, अपने माँ-बाप से अधिक पढा-लिखा था, पर उन्हे मरते समय तक कभी कष्ट नही हुआ था। चाहे धनी वे नही हुए, तब वह क्यो भूखा मरेगा ? और शान्ति, उसकी बहिन, भी हिन्दी पढी है और काम कर सकती है।

जहाँ-जहाँ से उसे आशा थी, वहाँ सब वह देख चुका था। बल्कि जहाँ आशा नही थी, वहाँ भी देख-देखकर वह लौट चुका था।

अब उसे कही और जाने को नही था—सिवाय घर के, और वहाँ उस जून के लिये रोटी नही थी और यह बताने को शान्ति हँसी थी हँसी थी . .

तब तक, भले ही उसके मन मे सम्पन्नता का, पढाई का, दरजे का, इज्जत-आबरु का, बुर्जुआ मनोवृत्ति का, कुछ अभिमान, कुछ निशान बाकी रहा हो अब नही रहा। उसके लिये कुछ नही रहा था। केवल एक बात रही थी कि उस जून के लिये रोटी नही है और शान्ति हँसी थी।

राह चलते उसने देखा, दाये ओर एक बडा-सा आँगन है, एक भव्य मकान का, जिसमे तीन-चार सुन्दर बच्चे खेल रहे है। एक ओर एक लड़की, बिना आग के एक छोटे से चूल्हे पर, लकडी की हंडिया चढाये रसोई

पका रही है और खेलने वाले लडके से कह रही है "आओ भइया, रोटी तैयार है।"

वह एकाएक आँगन के भीतर हो लिया। लडके सहमकर खडे हो गये—शायद उसका मुह देखकर।

उसने एक लडके से कहा—"बेटा जाकर अपने पिता से पूछ दो, यहा कोई पढाने का काम है?"

लडके ने कहा, "हम नही जाते, आपही पूछ लो।"

जानकीदास ने दूसरे से कहा—"तुम पूछ दोगे? बडे अच्छे हो तुम ...।"

उस लडके ने एक बार अपने साथी की ओर देखा, मानो पूछ रहा हो—"मै भी ना कह दू?" लेकिन फिर भीतर चला गया और आकर बोला—"पिताजी कहते हैं, कोई काम नही है।"

जानकीदास ने फिर कहा—"एक बार और पूछ आओ, कोई जिल्द साजी का काम है? या बढ़ई का? या और कोई?"

लडके ने कहा—"अबकी तो पूछ लेता हूँ, फिर नही जाने का। आकर बोला—"पिता जी कहते है— यहाँ से चले जाओ। कोई काम नहीं है। फिजूल सिर मत खाओ।"

जानकीदास बाहर निकल आया।

* * *

कोई पढाने का काम है? किसी क्लर्क की जरूरत है? जिल्दसाजी की? बढ़ई की? रसोइया की? भिश्ती की? टहलुये की? मोची-मेहतर की?

कोई जरूरत नहीं है। सबके अपने-अपने काम हैं, केवल जानकीदास की कोई जरूरत नही है और उस जून खाने को नही है, और शान्ति ऐसी थी

* * *

शाम को हालीउड पार्क के दरवाजे के पास जो भीड खड़ी थी, उन्हीं मे वह भी था। दुनियाँ है, घर है, शान्ति है, रोटी है, यह सब वह भूल गया था। भूल नही गया था, याद रखने की क्षमता, मन को इकट्ठा, अपने वश में, रखने की सामर्थ्य वह खो बैठा था। न उसका कोई सोच था, न उसकी कोई इच्छा थी। वहाँ भीड थी, लोग खड़े थे—इसी लिये वह भी था।

भीतर असख्य बिजली की बत्तियाँ जगमगा रही थी। बड़े-बड़े झूले रंग-बिरगी रोशनी मे, किसी स्वप्न-आकाश के तारों से लग रहे थे। कहीं एक बहुत ऊँचा खंभा था, जिसकी कुल लम्बाई नीली और लाल लैंपों से सजी हुई थी और ऊपर उसके एक तख्ता बँधा हुआ था।

उसी के बारे मे बाते हो रही थी। और जानकीदास मंत्र-मुग्ध-सा सुन रहा था।

वह जो है न खंभा, उसी पर से आदमी कूदता है। नीचे एक जलता हुआ तालाब होता है, उसी में।"

"उससे पहले दूसरा खेल भी होता है, जिसमे कुत्ता कूदता है।"

"नही वह बाद में है। पहले साइकिल पर से कूदनेवाला है। वह यहाँ से नही दीखता।"

"वह कितने बजे होगा ?"

"अभी थोडी देर मे होने वाला है—आठ बजे होता है।"

"यह आवाज क्या है ?"

"अरे जो वह गुम्बद मे मोटरसाइकिल चलाता है, उसी की है।"

जानकीदास का अपना कुछ नही था। इच्छाशक्ति भी नहीं। जो दूसरे सुनते थे, वही उसे दीख जाता था।

"वह देखो।"

झूले चलने लगे थे, चरखडियाँ घूमने लगी थी; उन पर बैठे हुए लोग नही दीखते थे। पर प्रकाश मे कभी-कभी उनके सिर चमक जाते थे और कभी किसी लडकी की तीखी और कुछ डरी-सी हँसी वहाँ तक पहुँच जाती थी। डरी-सी किन्तु प्रसन्न, आमोद-भरी .

जानकीदास देखता था और सुनता था और निश्चल खडा हुआ भी उत्तेजित हो जाता था। वही क्यों, सारी भीड ही धीरे-धीरे उत्तेजित होती जाती थी।

तभी अन्दर कहीं बिगुल बजा, तीखा, किसी प्रकार के सोच या चिन्ता से मुक्त पुकारता हुआ।

किसी ने कहा—"अब होगा साइकिल वाला खेल। चलो अन्दर चलें।'

"तुम नहीं चलोगे ?"

"चलो।"

"मैं भी चलता हूँ यार ? यह तो देखना ही चाहिये—"

"आओ न—जल्दी। फिर जगह नही रहेगी।"

भीड दरवाजे की ओर बढी। उत्तेजना भी बढी, फैली, फिर बढी।

जानकीदास भी साथ पहुँचा, टिकटघर के दरवाजे पर।

लोग टिकट लेकर भीतर घुसने लगे। जानकीदास खडा देखने लगा।

तभी एक लडका एक छोटी लडकी का हाथ पकडे, उसे घसीटता हुआ, जल्दी से टिकटघर पर पहुँचा और टिकट लेकर, बडे उत्तेजित, उत्तेजना से भर्राये हुये स्वर मे बोला कमला अगर देर से पहुँचा तो याद रखना, मार डालूगा ? उमर भर मे एक मौका मिला है

आगे जानकीदास नही सुन सका। लपककर टिकटघर पर जा पहुँचा। टिकट माँगी। ली। जेब मे डाली। दूसरा हाथ अन्दर की जेब में डाला—पैसे निकालने के लिये—चार आने। डाला और पडा रहने दिया। निकाला नही, उत्तेजना टूट गई।

जेब मे एक पैसा भी नही था।

*　　　*　　　*

"मुजरिम तुम्हें कुछ कहना है ?"

जानकीदास ने फिर एक बार दीन दृष्टि से मजिस्ट्रेट की ओर देख लिया, बोला नही। उसका मन कछुये की तरह तनिक और हिलकर बिलकुल जड हो गया।

उस जून उसने नही खाई थी, तो शान्ति ने खा ली होगी।

मजिस्ट्रेट साहब सेकड भर सोचकर बोले—"एक साल।"

शान्ति हँसी थी। उस जून के लिये रोटी नही है- यह कहने के लिये शान्ति हँसी थी।

# रामलीला

[श्री राधाकृष्ण]

पेशा मे कोई पेशा हुआ भी तो रामलीला का दल रखने का पेशा हुआ। दूकानदारी का पेशा होता, जमीदारी होती, महाजनी होती, कोई भी, कैसा भी पेशा होता, तो एक बात थी। मगर रामलीला का दल रखने का पेशा . . . सो भी यह खानदानी पेशा है। सात पुश्तों से रामलीला का दल चला आता है। और रामरतन जरा आधुनिक बुद्धि का आदमी है, सो अपने इस पेशे को पसंद नही करता। मगर खानदानी चीज है। रामलीला वह छोड़ नही सकता, अपना दल तोड नही सकता।

मगर ये जो ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा आकर राम बनते है, लक्ष्मण बनते है, बशिष्ठ और विश्वामित्र बन जाते है, सो रामरतन को पसद नही। यह इस प्रकार राम की पैरोडी हो जाती है, लक्ष्मण का उपहास हो जाता है, राजा दशरथ की मिट्टी पलीद होती है और महाज्ञानी बशिष्ठ के मुह से ज्ञान के बदले अज्ञान ही ज्यादा निकलता है। सो रामरतन रामलीला के इस पुराने डर्रे मे परिवर्तन करेगा।

और, वह रामरतन पॉच दिन से परेशान है। वह कोई ऐसा बालक खोज रहा है, जो राम का पार्ट करे। ऐसा ही वह किसी सॉवले-सलोने बालक की खोज मे घूम रहा है। तमाम ढूंढ आया, लेकिन रामरतन को ऐसा बालक नहीं मिलता। जो देखने मे आते है, वे जी को जॅचते नही। सब मे एक-दो त्रुटियॉ अवश्य आगे आ जाती है। वैसा मन चाहा बालक नही मिलता। जाने मिलेगा भी या नही मिलेगा।

पॉचवे दिन रामरतन निराश हो गया जब राम ही नहीं, तो रामलीला भी नही वह थक गया; शरीर से भी, मन से भी। उसे लगा जैसे वह कूडे के अन्दर शालिग्राम ढूढ़ रहा है। भला कहाँ मिलेगा ? उसे लगा कि इस

इतनी बडी धरती पर वह सब से ज्यादा लाचार प्राणी है। उसकी परेशानी मे कोई उसका सहारा नही हो सकता। भला यह रामलीला का दल क्या हुआ कि परेशानी का भण्डार हो गया। वह थककर पार्क की एक बेच पर बैठ गया अगर राम का काम करने वाला बालक नही मिला, तो फिर रामलीला कैसे होगी

कि वह देखता है कि एक वैसा ही अबोध, वैसा ही भोला, निर्मल-निश्छल सॉवला-सलोना बालक पार्क मे तितलियों के पीछे दौड रहा है। कौन लडका है? किसका लडका है? अगर यह राम का पार्ट करे, तब तो फिर कुछ कहना ही नही।

उसने बालक को बुलाया। अपने पास बिठाकर उससे तरह-तरह की बाते पूछने लगा। लडके ने कहा—मेरे पिता नही, मेरी मा है। वह क्या करती है, सो मै नही जानता। हमारे घर मे तीन गाय है। मा उसका दूध दूहती है। एक ग्वाला आकर उसका दाम दे जाता है। हमारे एक मामा है, सो बडी दूर रहते है। रगून कहाँ है, जानते हो? हमारे मामा वही नौकरी करते है। जब वे आवेगे, तो मेरे लिये एक दोना मिठाई लावेगे और एक रबर की गेद लावेगे। फिर वे मेरे लिये कोट सिला देंगे और हाफपैंट खरीद देगे। फिर कोई तकलीफ नही रहेगी।

इस बालक को पाकर रामरतन ने मानो आसमान का चांद पा लिया राम के लायक ऐसा बालक मिलना असम्भव था। थोडी देर के बाद वह उस बालक की मा के सामने खडा था और उसकी शकाओं का समाधान कर रहा था। उसकी मा को जो हिचक थी, सो रुपयों की आवाज सुनते ही मिट गई।

रामरतन ने बालक से पूछा—क्यों भाई, राम का पार्ट करोगे न

करूँगा!—बालक ने सरलता से जवाब दिया।

तीर चलाकर तब तुम ताडका को कैसे मारोगे।

बालक ने छोटी-सी धनुही से तीर का ऐसा सरल सन्धान किया कि रामरतन खुशी से निहाल हो उठा। ऐसा बढिया बालक कभी नही मिलेगा। कहीं नही मिलेगा। यह बालक राम का प्रतिरूप है राम का अभिनय इसके पास आकर सत्य और साकार हो उठा है

और दूसरे दिन से ही रामलीला मे दर्शकों की भीड तिगुनी-चौगुनी होने लगी। वह बालक राम के रूप और अभिनय को सार्थक कर रहा था।

*　　　　*　　　　*

फिर बाईस वर्ष व्यतीत हो गये। इतने दिनों की बडी लम्बी अनेकानेक कहानियाँ हैं रामरतन की रामलीला पार्टी आज भारतवर्ष में विख्यात है पार्टी के पास धन है, सम्मान है, प्रतिष्ठा है। मगर फिर भी रामरतन को शान्ति नही। अब उसकी पार्टी ग्वालियर मे आई है। सम्राट् ने खास तौर पर उसकी रामलीला पार्टी को निमत्रण दिया है। लोग उत्सुक है। मगर रामरतन जानबूझ कर पन्द्रह दिनो से देर कर रहा है। उसके पास रावण की कमी है। जो व्यक्ति रावण का काम करता है, वह रामरतन को ही पसद नही फिर उसे ग्वालियर के नरेश कैसे पसैद करेगे? इतनी बडी इस पृथ्वी पर उसे एक रावण नही मिलता। रामरतन रावण खोज रहा है और परेशान हो रहा है। रावण की प्रतिच्छवि कही दीखती नही। उस रावण के भयानक चेहरे पर क्रोध था, हिसा थी। उसके भारी गले से कर्कश आवाज निकली थी। हाँ, ऐसा ही रावण होना चाहिये, ऐसा ही रावण रामलीला मे सजेगा, ऐसा ही रावण जगतमाता जानकी का हरण कर सकता है।

और, आखिर ऐसा ही एक व्यक्ति उसे एक शराबखाने में दिखलाई दिया। उसके चेहरे पर अभिमान और क्रूरता थी। कर्कश कण्ठ से गालियों की बौछार निकल रही थी। दूकानदार से वह मुफ्त मे शराब माँग रहा था लेकिन शराब के बदले दोनों मे बेशुमार गालियों का विनिमय होने लगा था। हाँ यही व्यक्ति है, जो चाहे तो रावण बनकर सचमुच सज सकता है। चेहरे पर कैसी भयानकता है, आँखों में कितना कमीनापन है। यह साधु का कपट-वेश धारण करके सीता के पास जायगा तब भी मन, वाणी और रूप की भयानकता नही मिटेगी। देखते ही लोग कह देंगे, यही रावण है, कपटी, बदमाश!

रामरतन आगे बढ गया और दूकानदार के सामने चवन्नी फेंक कर बोला भई, मेरी ओर से इन्हें पिला दो; एक बोतल!

एँ! रावण की प्रतिच्छविवाला व्यक्ति बोला तू तो बडा दयावान है यार! बतला, मै तेरा क्या काम करूँ? तू मुझसे क्या काम लेगा?

रामरतन ने कहा—मेरी एक रामलीला पार्टी है; मै उसमे तुम्हे रावण का पार्ट देना चाहता हूँ।

रावण? . . अच्छा, मै करूँगा।

और, सचमुच उसके द्वारा रावण का काम सबसे अच्छा हुआ। राम-लीला समाप्त होने के बाद रामरतन ने उससे पूछा—बोलो, आज पुरस्कार में मै तुम्हें क्या दू?

रावण ने कहा—मै आप से पहले भी बहुत कुछ पा चुका हूँ; अब आज क्या माँगू?

पहले? रामरतन ने आश्चर्य से कहा—मैंने तो पहले तुम्हे कभी देखा भी नही!

हाँ, आप मुझे नही पहचान सके, लेकिन मैंने आप को पहले दिन ही पहचान लिया था। मै वही आदमी हूँ, जो लडकपन मे आप के यहाँ राम का पार्ट किया करता था। उसके बाद मेरे मामा आकर आप से मुझे ले गये। याद कीजिये। मै वही आदमी हूँ। एक दिन आप के यहाँ मै राम बनता था। याद आया?

हाँ रामरतन को अब सब याद आ गया। रावण के उस भयानक चेहरे के भीतर से रामरतन को राम की वही साँवली-सलोनी निर्मल छवि फूटती हुई सी दिखलाई पडी। वह आश्चर्य से चकित होकर बोल उठा—हाँ, तुम वही राम हो। मुझे याद आ गया। तुम वही राम हो।

# सुलताना की आत्मा

## [ पहाड़ी ]

जब हम लोग फौरेस्ट के बँगले पर पहुँचे तो पाँच बज गए थे। मई की गरमी से वह बँगला काफी तपा था और साठ मील का सफ़र तय करने के बाद हम बहुत थक गए थे। हम फौरेस्ट की अपनी निजी सडक से आए थे, जहाँ कि शिकार खेलने की मनाही है। ड्राइवर ने बताया कि किसी जमाने में अँग्रेज अफमर वहाँ जाडों मे शिकार खेलने के लिए आते थे, फिर राजा महाराजाओं को भी इसका शौक़ हुआ और अब तो लगता है कि शिकार खेलने की प्रथा बन्द हो जायगी। राह मे शाल, तुन, जामुन आदि के घने जगल थे। बाँस तथा झाडियाँ भी दूर-दूर तक चली गयी थी। आसपास मीलों तक वस्ती का पता नही था। हिमालय का इतिहास जितना पुराना है, इस तराई का उसके समकालीन ही होगा। यह तराई का हिस्सा पजाब को छूता हुआ बिहार और आसाम तक पहुँचा हुआ है। यहाँ का सही ज्ञान उन निवासियों को है, जो कि सदियों से कई पुश्ते यहाँ काट चुके है, जिनका काम कि अधिकारियों, राजा-महाराजाओं तथा और शौकीनो को शिकार खिलाना रहा है। वे स्वय भी इस कला मे प्रवीण है और जगल की सारी विद्या जानते है। सब मौसमों तथा जगल के विधान का ज्ञान उनको है।

चीतल, चीता, हिरन, सुअर, बारहसीघा, लकडबग्घा आदि जानवरों के अलावा भाँति भाँति की जगली चिडियायें तथा साँप के परिवार के रेंकने वाले जन्तु भी स्वतन्त्रता से यहाँ विचरा करते है। शिकारियों ने इन सुन्दर जंगलों मे प्रवेश पाने का सदा ही निरर्थक प्रयास किया है। यहाँ के निवासी उस धरती के भीतर का ज्ञान स्वयं छुपाए हुए रखते है। उस भेद की बात को और कोई नही जानता है। परदेशी अनुदार होता है और जंगलों को अपने स्वार्थ के लिए रौंदता है, इससे सभी परिचित हैं। राह मे एक मरा

चीतल एक विशाल वड की पेड की छाया पर पड़ा था और चील तथा काली पखों वाले भयानक गिद्ध चारों ओर चक्कर काट कर ऊपर झपट रहे थे। लोमडियाँ और जगली कुत्ते भी अवसर पाकर बीच बीच मे उसे नोच लेते थे।

ड्राइवर ने हमे बताया था कि रात को चीते ने उस जानवर का शिकार किया होगा। तथा पेट भरने के बाद झाडियों मे इसे छुपा गया होगा। जगल मे सब आजाद है। लोमडियों ने उसकी गंध पाकर झाडियों के बीच से हटा कर यहाँ डाल दिया और अब सब अपना अपना हिस्सा बॉट रहे थे। चीते को गंध का ज्ञान नही होता है। वह अपनी शक्ति के बल पर शिकार करता है। और निर्बल लोमडियाँ गध के ज्ञान के कारण ही तो अपना भोजन पाती है। जब कि हम एक सॅकरे से रास्ते से गुजर रहे थे, जिसके दोनों ओर बॉस के बडे-बडे जगल थे, तो हिरनों का एक गिरोह हमारी कार के आगे से चौकडी भरता हुआ निकल गया था। यदि ड्राइवर ने कार धीमी न कर दी होती तो वह जरूर किसी जानवर से टकरा गई होती। जगली मुरगियाँ तथा और पक्षी स्वच्छन्दता से उड रहे थे। मानो कि वे निर्भय हों। एक बडा हरे से रंग का मटमैला सॉप तो कार के पहिये से चिपका हुआ बडी दूर तक चला आया था। यह सब देखकर सोचा कि आदि मानव को कितना सघर्ष नही करना पडा होगा। आज तो वह अपनी बुद्धि पर अधिक भरोसा करके आपस ही में एक दूसरे का शोषण करना सीख गया है। शासन करने की उसकी लिप्सा बढ गई है।

खानसामा ने बाहर बरामदे मे कुरसियाँ डाल दी थी और हमारे नौकर ने सामान कमरों में लगा लिया था। इस डाक बॅगले में गरमियों मे बहुत कम अफ़सर टिकते है। अधिकतर शिकारी व अधिकारी जाडों में शिकार खेलने के लिए ही आते हैं। चौकीदार ही खानसामा का काम करता है और वह साहब लोगों की रुचि क कुछ सामान भी रखता है। भगी को भी सरकारी वेतन मिलता है और वह मुरगियों का एक बाडा रखता है। साहब लोग इनाम दे जाया करते है और इनकी आर्थिक स्थिति बुरी नही है। ये लोग सभी मौसमों मे यहाँ रहते है और जगली जानवरों से कोई भय इनको नही रहता है। चौकीदार की अवस्था लगभग साठ साल की होगी। अब तो वह

सब काम नही करता है। उसका लड़का चार साल हुए फौज से छूट कर आया है और वही सब काम करता है। अफसरों ने वादा किया है कि उसे वे शीघ्र ही पक्का कर देंगे व बूढे की पेशन भी चालू हो जायगी।

हवा बिल्कुल बन्द सी थी और बडी उमस हो रही थी। लगता था कि उस गरमी मे हम पिघल जावेगे। वह बूढा ताड के एक पुराने पखे से हवा करने का निरर्थक सा प्रयास करने लगा। गरमी से परेशान होकर मै गुसलखाने पहुँचा और गरम से पानी मे नहा कर बाहर आया। बिस्कुट का एक टुकडा दातों से दबा कर चबाया और चाय के दो प्याले पी गय मेरा साथी ठेकेदारों तथा और सरकारी अधिकारियों से बाते कर रहा था। सरकार अपनी नयी योजना के अन्तर्गत यहाँ की धरती पर फौज से छूटकर आए हुए लोगों की बस्ती बसाना चाहती थी। पेडो को बडी-बडी मशीनो से उखाड कर फिर उस धरती के हृदय को टैक्टर मे चीर कर उसकी कल्पना एक नई दुनियाँ बसान की थी। यह कल्पना पाँच साल तक दिल्ली के लाल फीतों वाली फाइल से निकल कर, फिर दो साल तक लखनऊ की फाइलो से उड कर अब यहाँ पहुँच सकी थी।

साँझ हो आयी थी और मै बरामदे मे खड़ा होकर सामने दूर तक फैले हुए विशाल जगल की ओर देख रहा था। वह स्वस्थ और सबल जंगल मे जाने क्यो मन में एक अज्ञेय-सा बल प्रदान करने लगा। गरमी अभी भी उसी भाँति पड़ रही थी और मन बेचैन-सा था। मैं अनमना-सा बाहर आ कर टहलने लगा। इस स्थान का यह मेरा पहला ही अनुभव था। अब कुछ रात सी पड़ने लगी थी। तभी मैंने पाया कि दक्षिण की ओर से एक भारी सी आवाज आयी और वह लगातार समीप सी सुनाई पड़ रही थी। मैं चौक-सा उठा कि क्या बात होगी और उधर बढा, पर आगे धुँधले मे कुछ भी साफ़-साफ़ नही दीख पडा। फिर वह आवाज तो जंगल की ओर से लगातार प्रतिध्वनित हो रही थी, उसका वेग कम नही हो रहा था इसके पहले कि सवाल करूँ, चौकीदार ने बताया कि भौंतू चल रहा है। उस प्रदेश की वह भाषा मेरी समझ में नही आयी। यह तो वह बता चुका था कि सामने जो नदी बह रही है उसमें बहुधा संध्या को इसी प्रकार तेज आँधी चला करती है। उस आंधी की आवाज को सुन कर लगता था कि पुराने जमाने की कोई

बहुत बडी सेना उधर से गजर रही है। फिर भी वह भौंतु का चलना एक कौतूहल की बात थी

नदी की ओर जाने का प्रयास करना उस समय ठीक नही लगा। सुबह वहाँ जाने का निश्चय करके मैं लौट आया। सामने जंगल से, किसी जानवर, तो कही किसी पक्षी की तेज भयावनी चीख कानों मे पडती थी। दोस्त ने बताया था कि इस जगल मे इस समय एक चीता मादा अपने बच्चे के साथ रहती है। वहाँ का एक निवासी तो बता रहा था कि इस समय जितने जानवर वहाँ है, साहब चाहे तो कल वह उनको अच्छा शिकार करवा सकता है। वह नौजवान लडका सारी बातों का वर्णन करते हुए उत्तेजित हो उठा था। उसने तो यह भी बताया था कि चार पाँच रोज पहले जब कि वह जगल में भैंसे चराकर लौट रहा था, तो उसने उस चीते को अपने बच्चे के साथ नदी के पास वाली खादिर में देखा था। उसका विश्वास था कि वह वही पर बाँस की घनी झाड़ियों के बीच रहती है। वहाँ पर नदी के कारण नमी रहती है, पानी भी उसके समीप ही है।

उस निर्भीक सत्रह-अठारह साल के लडके की बातों को सुन कर कौतूहल हुआ था। वह तो स्वय एक बार चीते के पंजों के पीछे-पीछे वहाँ तक गया था और उसने पाया था कि उस समय वह वहाँ लेटी हुई थी। यदि वह उस पर हमला करती तो क्या होता यह बात उसने न तब सोची और आगे भविष्य में भी ऐसा अवसर आयेगा तो भी वह नही सोच सकेगा कारण कि रोजाना जीवन मे जगल के जानवरो स भेंट होती ही रहती है और मौका पडने पर तत्काल मोरचा भी उसी स्थिति के अनुसार सोचा जा सकता है। और लोगो ने भी शिकार के लिए निमन्त्रण दिये। दोस्त एक बडे ओहदे पर नियुक्त होकर वहाँ की जाँच व प्रारम्भिक कार्य की रूप-रेखा निश्चित करने के लिए आए थे। अतएव हर एक ठेकेदार चाहता था कि उनको खुश कर के कृपा पात्र बन जाय।

रात को हम खाना खा रहे थे। हम सब मिल कर सात व्यक्ति थे। पास की नदी से पकडी हुई मछलियाँ तथा जगल स पकड कर लाया गयी मुरगियों का गोश्त था। इसके अतिरिक्त ठेकेदार समाज की अपने उपयोग के लिए लायी हुई विलायती शराब की बोतले थी। खाने में काफ़ी गप्पसप्प रही और

दो तीन ठेकेदारों की हालत तो यह थी कि वे बिल्कुल बेहोश होने पर भी पेग पर पेग चढा रहे थे कि कोई यह न समझ बैठे कि वे पीने मे कमजोर हैं। मैं जंगली मुरगी की हड्डियाँ चबा रहा था। मछली का शोरवा भी मै काफी पी गया। तभी मैंने एकाएक अपने साथी से पूछा कि यह भौतू नदी में क्या चला करता है। मेरी उस अज्ञानता पर सब-के-सब अवाक् मुझे देखते रह गये। दोस्त ने बताया कि आज से बहुत साल पहले सुलताना भौतू की फौज इसी तेजी से जगल पार किया करती थी। सालों तक उसने हमारी सरकार की नाको चने चबवाये थे। मीलो तक फैले हुए इस तराई भावर मे उसका राज्य था

'सुलताना भौतू' एकाएक मेरे मुँह से छूट पडा।

उस वातावरण मे मेरे वे शब्द छुप गये। उस व्यक्ति की बात बहुत पुरानी हो गई थी। वह एक साधारण डाकू था, जिसे कि किसी अग्रेज पुलिस अधिकारी ने पकडा था और कानन ने उस फासा की सजा दी थी।

: दो

नौ बज गए थे। और सब लोगों को विदा करके मेरा साथी मेरे पलँग के पास आराम कुरसी पर बैठ गया। मुझे नीद नही आ रही थी। उसने मुझसे पूछा—"सुलताना के बारे में जानना चाहते हो?"

"सुलताना के?" मैंने आश्चर्य मे दुहराया।

"हा, बूढा गोबरसिह उसे भलीभाँति जानता था और जब जवान था तो उसके तूफानी हमलो मे कई बार शरीक हुआ था।"

गोबरसिह वह बढा खानसामा सुलताना क साथ रह चुका है, जान कर मुझे खुशी हुई। दोस्त न बताया कि शुरू-शुरू मे तो वह राज सध्या को नदी के किनारे चलती हवा को सावधानी से सुना करता था। उसकी धारणा थी कि सुलताना मरा नहीं है। इस दुनियाँ में कोई उसे मार नही सकता। उसे लोगों ने बताया था कि सुलताना को सरे बाजार सिपाहियों से घिरा कचेहरी जाते हुए देख चुके हैं। उसके पाँवों मे बडी-बडी बेडियाँ व हाथों मे हथकडी पडी रहती है।

और वह बूढ़ा गोबरसिह तो हँस पड़ा था। हँसते-हँसते उसकी आंखों से आंसू की धारा बह निकली और फिर उसकी सिसकियाँ बँध गई। मै

समझा कि वह पागल हो गया है। दोस्तो ने शराब का एक पेग उसे दिया और अब तो नशे मे उसकी आँखें चमक उठी थीं। उसने बाहर जाकर दो तीन बार थूका और फिर जोर से बोला—नमकहराम, जो कि कभी डर से सुलताना के आगे नही पडते थे और उसका नाम सुनते ही जिनको कँपकँपी आने लगती थी, उनकी हिम्मत पडी कि वे सुलताना को बेडियाँ पहनावे।

गोबरसिह अब भीतर पहुँचा और कहने लगा—"सरकार' वह देवता था। मेरा वास्ता पहले पहल उससे तब पडा, जबकि मै रुपये न होने के कारण अपने पुरखो की जमीन का पट्टा साहूकार के नाम लिखा आया था। वह खानदानी कर्जा कई पुश्त मे नही दिया जा सका था और उसको चुकाने की सामर्थ्य मुझमे नही थी। साहूकार से हमेशा किसी न किसी काम के लिए क़र्ज़ा निकालना पडता है। उससे झगडा करके गाँव में कोई नहीं रह सकता है।

पुरखों की जायदाद को क़र्जे मे चुका कर मैं फुरती से घर लौट रहा था कि जंगल की राह पर मुझे एक नौजवान मिला। उसने मझसे शहर का समाचार पूछा। वह न जाने कैसे जान गया कि मै बहुत दुःखी हूँ। फिर मेरी सारी बाते सुन कर उसने अपने कमर से एक थैली निकालकर मुझे दी और कहा कि मै साहूकार के यहाँ जाकर अपना पट्टा वापस ले लू। पर इससे पहले कि मै उसे धन्यवाद दू, वह चला गया था। साहूकार ने रुपया लेकर कहा था कि वह चोरी का माल है जो कि उसे भौत ने दिया है उसने धमकी भी दी थी कि वह उसे पुलिस मे दे देगा। तभी मुझे ज्ञात हुआ था कि वह कौन व्यक्ति है। उससे यदि बेईमान साहूकार घबराते थे, तो यह ठीक ही था। उससे स्वय मुझे प्यार हो गया था। उस सरल व्यक्ति ने तो मुझे मोह लिया था। यही कारण था कि गरीब जनता उसे प्यार करती थी। हरएक अपनी जान की बाजी लगाकर भी उसकी रक्षा करना चाहता था। गरीब बुढिया का वह बेटा था। जहाँ भी कोई मुसीबत जदा दिखलाई पडता, वह वहाँ पहुँचकर उसकी मदद करता था। कभी उसने बेकसूर को नही सताया था। सरकारी पैसा खानेवाले पुलीस के जासूस कभी भी जनता के हृदय को नही टटोल सकते हैं। और सुलताना तो उसी जनता के हृदय मे छुपा रहता था। हरएक उसे आश्रय देना अपना गौरव समझता था।

"मै भी तीन साल से उसके साथ रहा  उसे सभी जगलों की पूरी-पूरी जानकारी थी। उसका प्यारा कुत्ता सदा उसके साथ रहता था। जगली पशु भी शायद उस सहृदय व्यक्ति को पहचान गये थे। वह जानता था कि एक अंग्रेज़ अधिकारी उसे पकडने के लिए तैनात किया गया है  लेनिक कभी उसने उसकी हत्या करने की नही ठहराई। वह तो एक बार उस पुलिस के अफसर से निहत्था हो मिला था और उसे एक तरबूज़ भेंट करके कहा था कि वे बेकार एक डाकू के पीछे अपनी जान जोखिम मे डालते हैं। उसने सावधान किया था कि सुल्ताना अपने दुश्मन को भी धोखे से नही मारता और न वह पीछे से हमला करता है। यह भी वह जानता है कि वे अपने परिवार से दूर यहां नौकरी करने के लिए आये हैं। उसकी उनसे कोई लड़ाई नही है। साहब ने समझौते की बात चलाते कहा था कि वह बिना किसी शर्त के यदि सरकार की शरण मे आ जावे तो सरकार उसको माफी पर विचार करेगी। इस पर वह हंसा था कि एक सिपाही माफी कभी नहीं मांगता है  वह तो केवल हार या जीत ही जानता है

बदमाशों के लिए सुल्ताना का नाम परेशानी पैदा करता था। उसकी आखो मे कभी कोई अपराध छुपा नही रहता था। मनो सोना लूटनेवाला सुल्ताना सब कुछ गरीबों को बॉट देता था। उसके हाथ सदा खाली रहते थे। वह कभी शराब नही पीता था  एक बार उसके दल के कुछ साथियों ने एक बारात लूटी थी। एक मनचला नवबधू को भी पकडकर ले आया था। सुल्ताना ने जब सुना तो उस युवती को स्वयं उसके पिता को सौपकर माफ़ी मॉगी थी। उस युवती की दहन की बिदाई मे सोने के कई गहने भी दिये थे

"सरकार ने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। जिस गॉव पर भी उसे आश्रय देने का शक होता वहा पुलिसवाले पहुंचकर मनमाना अत्याचार करते थे। सैकडों निरपराध युवकों को पुलिस पकडकर ले जाती कि वे उसकी सहायता करते हैं। गावों को इस प्रकार लुटने का हाल सुनकर उसका हृदय काप उठता था। इसीलिए एक दिन उसने अपने चुने हुए साथियों के अलावा सब को विदा कर दिया था। वे उसे नही छोडना चाहते थे। पर उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने की ताकत किसी मे न थी। बिदाई के दिन वह बहुत दुखी था। पर बेबसी में क्या करता!"

गोबरसिंह उसके बाद का समाचार इतना ही जानता था कि सुलताना को फासी लगी थी। उसका पूरा विश्वास था कि सुलताना चाहता तो कोई शक्ति उसे पकड नही सकती थी। वहाँ की सारी जनता का वह प्यारा बेटा किसी के पकड मे न आता। यह उस देश के कलक की बात होती। सुलताना एक दिन इसीलिए अपने साथियो के साथ युद्ध करता हुआ पकडा गया था। वह बहादुर सिपाही था, इसलिए उसने आत्महत्या स्वीकार नही किया। वह तो दिखा देना चाहता था कि अग्रेज की कचहरी वाला न्याय कितना झूठा है।

सुलताना अपने प्यारे कुत्ते को उस अग्रेज अफसर की सरक्षकता मे सौप गया था जिसने कि उसे पकडा था। इन जगलों मे रह कर उसने मानव हृदय पाया था दुनिया मे इतने सहृदय व्यक्ति शायद कम पैदा होते हैं। पुलिस विभाग मे सैकडों फाइले मिलेंगी, जिनमे कि पेशेवर पुलिस के अधिकारियों की झूठी रिपोर्ट होंगी। न्यायालय की फाइलों मे—जहाँ कि इगलैण्ड के बडे घरानों के बच्चों को जज बनाया जाता था—वहाँ उपनिवेश के इस नागरिक को खूनी और बदमाश बताया गया होगा। लेकिन उसकी कहानी तो यहाँ का बच्चा-बच्चा जानता है। हर एक चाहता है कि उसका बच्चा वैसा ही नेक, सहृदय, चरित्रवान और बहादुर बने वह उस धरती का बेटा जिसका शोषण करने के लिए अग्रेज आया थ तराइ का चप्पा चप्पा आज भी उसकी जीवन घटनाओ की गूँजों से भरा हुआ ह।

भौतू चल रहा है, यह सुन कर मेरे मन मे कम कुतूहल नही हुआ था। वह गति कैसी स्वस्थ थी! वह बूढा चला गया था और सोने के पहले दोस्त ने पूछा—"जानते हो, यह यग कहाँ हैं?"

यंग? वह पुलिस का सिविलियन अधिकारी जिसने कि भौतू को गिरफ्तार किया था।

"वह आजकल मलाया में—विद्रोहियों को दबाने मे—मोरचाबन्दी कर रहा है। मलाया की जनता को कुचलने का प्रयास!

तीन

और अगले दिन मै शाम को कार से रेलवे स्टेशन पर पहुँच गया था दोस्त ने मुझे विदाई दी। शाम का वक्त था। सूर्य की लाली पश्चिम मे फैल

रही थी। गाडी तेजी से चल रही थी। सामने एक पुराने किले के अवशष दिखलाई पडे। पूछने पर सहयात्री ने बताया कि इसी किले मे जरायम पेशे वाले लोगों को सरकार रखती थी और सुलताना का बचपन इसी म कट था। यही से भाग कर वह स्वतत्र हुआ था

वह किला पीछे छूट गया और सोचा मैंन कि यदि उस व्यक्ति को अवसर मिला होता ......

लेकिन डाक बँगले के पास बहती नदी तो सदा बहती रहेगी और गरमियों की सध्या मे सदा ही वहाँ भौतू चलेगा.....

# मिस्टर पिल्ले

[ श्री लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी ]

दूर से उनकी गञ्जी खोपडी पीतल के स्वच्छ कटोरे की तरह चमकती प्रतीत होती। कानों के ऊपर दोनों ओर बाल हैं। क़द छोटा, ठिगना। आवश्यकता से अधिक स्थूलकाय शरीर। कभी-कभी कुर्सी पर बैठने के पश्चात् जब उठकर खडे होते हैं तो कमर के दोनों कूल कुर्सी के हत्थों के बीच ऐसे फँस जाते है कि कुर्सी भा उन्ही के साथ उठ खडी होने का उपक्रम करने की हठधर्मी करती है दाँत स्वच्छ, मोती की तरह चमकदार, किन्तु सामने के दो ग़ायब ! सिगरेट के बजाय सिगार खुले दाँतों के रिक्त स्थान की अच्छी पूर्ति करता है। आँखों पर चश्मा है, पुरानी चाल का, परन्तु जब वे निकट किसी से बाते करते है, तो शीशे के बीच से न देख, उसके ऊपर से आँख चढ़ा कर देखते है। ओंठ मोटे और भद्दे, जो तलवार छाप मूछों की शोभा को प्रसारित करने मे भयंकर बाधा उपस्थित करते हैं। यह है, मिस्टर पिल्ले !

परिचय ?—परिचय भी इसी प्रकार हुआ। मै राशन आफिस कार्ड बनवाने गया था। एक बाबू ने कहा—'पिल्ले साहब बनायेंगे। आते ही होंगे, समय हो चुका

मैंने सोचा कल आकर बनवा लूंगा और चलने को हुआ कि चपरासी ने कहा—'आ गये पिल्ले साहब, आज बहुत देर कर दी, साहब ने

चपरासी के निकट आकर वे बोले—'क्यों ? ठीकठाक तो ?

'जी, लोग आपका इन्तजार कर रहे हैं, कुछ बेचारे तो लौट भी गये।'

'जो गये जाने दो, उनकी चिन्ता क्या ? है कौन यहाँ अब ?'

चपरासी ने मेरी ओर संकेत कर के कहा—'आप भी बस लौटे ही जा रहे थे।'

'अच्छा ठीक, आप? नही, नही अब मै आ गया हू। खाली हाथ क्या जाइयेगा? बैठिये। अभी कार्ड बनता है।' मिस्टर पिल्ले ने बडी विनम्रता से मुझ से कहा। फिर दूसरे ही क्षण चपरासी से कहा—'देखो, उस तागे वाले को एक रुपया दे दो।'

'हुजूर मेरे पास

'अबे तुझसे कौन कहता है? किसी बाबू से लेकर

चपरासी खाली हाथ लौट आया, बोला—'साहब

तब मिस्टर पिल्ले ने मेरी ओर देखा।

मुझे कार्ड बनवाना था। सेवा न करने से बाधा भी उपस्थित हो सकती थी। मै तपाक से बोला—'हॉ साहब, मै दिये देता हू, यह लीजिये

मेरे हृदय मे जैसे किसी ने पिन चुभो दी हो। लेकिन पिल्ले साहब ने तुरन्त चपरासी से कहा—'सभी कङ्गाल तो नही है यहॉ? जा तॉगे वाले को

चपरासी चला गया और लगभग एक घण्टे मे मेरा कार्ड भी बन कर तैयार हो गया। मिस्टर पिल्ले उसी समय से मेरे अन्तरग मित्र ही नही बने, बल्कि अध्ययन की पुस्तक भी

*　　　*　　　*

मिस्टर पिल्ले ने कई बार आग्रह करते हुए कहा था—'किसी दिन मेरे बगले पर भी तशरीफ लाइये।'

मैं टालता जा रहा था। क्योकि मेरे और उनके सस्कारो मे बडी भिन्नता थी। उनकी स्वीकृति मेरे निकट अस्वीकृति थी और उनकी अस्वीकृति मेरे लिए स्वीकृति थी।

एक दिन मेरे जी मे आया चल कर मिस्टर पिल्ले का दर्शन करूं और मिस्टर पिल्ले के बगले को खोजते, उस हाते मे जा पहुँचा, जहॉ का उन्होंने हवाला दिया था। एक बच्चे से मैंने पूछा—'यहॉ पिल्ले साहब भी रहते है।'

'कौन वे पादरी साहब? वह वहॉ जाइये। लडके ने एक दिशा की ओर संकेत कर दिया।

मै विचार करने लगा—ये तो मद्रासी है, किन्तु पादरी कैसे और कब हो गये ?

मै सामने जा खडा हुआ। देखा—निहायत गन्दी कोठरी, बहुत तग, दिन मे भी मच्छरों की भनभनाहट, कोठरी के सामने कूडे का ढेर। चारों ओर की छोटी-छोटी कोठरियो मे हरिजन, कोरी, और चटाई बनाने वाले रहते हैं। हाते के धुए ने सूर्य की रोशनी को मन्द-सा कर दिया है। और उस कोठरी मे दो स्त्रियाँ लड रही हैं। लडाई मद्रासी भाषा में हो रही थी, जो निश्चय ही ध्यान से सुनने की उत्सुकता पैदा कर रही थी। आपस के कुछ अनपढ लोग उस वाक्युद्ध का आनन्द ले रहे थे और कभी-कभी बीच में, व्यग्य से मुस्कराते भी थे।

ये दोनों मिस्टर पिल्ले की ही पत्नियाँ है यह रहस्य मझे उसी दिन उसी क्षण मालम हआ।

मैं भी सुनता रहा। जो कुछ भी समझ मे आया वह यह कि झगडा डबल रोटियों को लेकर हो रहा है। मिस्टर पिल्ले की स्थिति गम्भीर है। आज उनकी जेब कतई खाली है। यदि डबल रोटी की व्यवस्था हो जाती, तो मामला सम्हल जाता। किन्तु मिस्टर पिल्ले मजबूर है। इतना होनें पर भी एक अन्याय और भी कर रहे हैं। वे पक्ष लेते है, अपनी उस पत्नी का जो कुरूप, भोंडी और स्थूलकाय है।

मै खड़ा-खडा ऊब रहा था कि पिल्ले साहब की दृष्टि मुझ पर पडी वे झट बाहर निकल आये। बोले—"मूर्ख है ये, देहाती

मैंने कहा—'बात सच है। लेकिन यह सम्भालिये पाँच का नोट और फ़िलहाल जिन वस्तुओं को लेकर झगडा हो रहा है, जिनकी कमी है, उन्हें मंगा लीजिए।'

उन्होंने शीघ्र ही—सधन्यवाद —नोट ले लिया और उसे उन दोनो के बीच फेंकते हुए कहा—'यह लो, किन्तु अब चुप रहो।'

फिर मेरी ओर मुँह कर के अपनी पत्नी की ओर इशारा कर बोले—'मिस्टर बाञ्चू, मै किसी प्रकार भी उसे असन्तुष्ट नही कर सकता।'

मैंने प्रश्न कर दिया—'ऐसा क्यों मिस्टर पिल्ले ?'

उत्तर मे उन्होंने अपनी दूसरी पत्नी की ओर इशारा कर कहा—'यह मेरी पहली 'वाइफ' है। देखने-सुनने मे गोकि अच्छी है, परन्तु अनावश्यक रोब गालिब करना चाहती है जो मुझे बरदाश्त नही। फिर, इससे भी कही ज्यादा जो बात मेरे निकट अहमियत रखती है, वह है, उस बेडौल स्त्री की बात रखना, उसका सम्मान करना। कारण, उसके नाम बैक एकाउण्ट है। वह कभी किसी की पत्नी थी। दूसरी शादी मैने इससे की, केवल पैसे को देख कर। शादी के पूर्व इसने पूछा था—'आप विवाहित तो नही?' तब मैंने इससे झूठ ही कह दिया था—'नही।' जब शादी हो चुकी और असलियत खुली, तो इसको मानसिक चोट लगी। सच तो यह था कि बैक एकाउण्ट इसी के नाम है, काम तो यही आयेगी। इसे नाराज़ कैसे किया जा सकता है?'

मै अब वहाँ से खिसकने वाला था, कि इसी बीच एक दूसरा व्यक्ति भी हमारी ओर आता दिखाई पडा। मिस्टर पिल्ले अन्दर खिसक गये। वह मेरे निकट आ कर खडा हो गया। खडा रहा काफी देर तक। मै भी पिल्ले साहब की प्रतीक्षा करता रहा। किन्तु वे बाहर नही निकले। उनकी एक पत्नी ने कहा—'साहब मार्केटिग करने गया है। अभी सब जाओ!

'किधर से गया साहब?'

'पिछले दरवाज़े से।'

मै आश्चर्य मे पड गया। आखिर ऐसा मिस्टर पिल्ले ने क्यों किया।? क्या आवश्यकता आ पडी? तत्काल ही मैने उन आगन्तुक महाशय से प्रश्न किया—'आप कैसे पधारे? कोई काम था साहब से? राशनकार्ड . तो..?'

'जी नही, जी नही, यह क्रिस्तान रुपये उधार लाया था, अब देता नहीं है। पचीसों बार आ चुका हूँ, लेकिन आना ही व्यर्थ कर देता है। आज ही, देखिए न, आँख मे धूल डाल कर कैसे चम्पत हुआ है? अच्छा, अब बच्चू से निपट ही लुगा।'

मिस्टर पिल्ले के क्रियाकलाप मुझे विचित्र-से लगे। मै मुस्करा कर घर की ओर चल पडा।

दूसरे ही दिन, सचमुच ही मिस्टर पिल्ले हास्पिटल मे दाखिल कर दिये गये थे, जो एक ओर 'स्प्रिगदार बेड' पर लेटे चोटों का आनन्द ले रहे थे।

समाचार मिलने पर मै उन्हे देखने हास्पिटल जा पहुँचा। देखा—उनकी एक टाँग और एक हाथ ऊपर उठा कर बाँध दिया गया है।

मैंने सहानुभूति के स्वर मे पूछा—'यह सब क्या मिस्टर पिल्ले ?

'हाथ-पैर झूला-झूल रहे है, कोई विशेष बात नहीं है ?

'आखिर यह सब हुआ कैसे ? कही झगड़ा फ़िसाद .... ?'

'कतई नहीं। मेरी किसी से दुश्मनी ही क्यों होने लगी ? मैंने किसी का बिगाड़ा ही क्या है ?—यह सब मोटर-दुर्घटना का परिणाम है।'

मै ठहाका मार कर हंस पड़ा। मिस्टर पिल्ले ने पूछा—'आखिर हमी कैसे आयी ?'

साहस पर ! 'मैंने उत्तर दिया।

'चिन्ता क्या ? दो दिन मै जैण्ट हो कर फिर आता हूँ, मिस्टर बाञ्चू ! यह सब चलता रहता है।' कह कर उन्होंने मुझे सर हिला कर वहाँ से चले जाने की आज्ञा दे दी।

ज्यों ही मै हास्पिटल के बाहर आया, त्योंही फिर ठहाका लगा कर हंस पड़ा—अपने प्रभु के गुण गान के उपलक्ष मे।

* * *

उस दिन मेरे यहा अनेक अतिथि आ गये थे। राशन की कमी देख कर अनायास ही पिल्ले साहब का स्मरण हो आया। सोचा मैंने—अब उन्ही की शरण लेनी चाहिए।

सन्ध्या समय उनके बँगले पर जा पहुँचा। देखा—मिस्टर पिल्ले नही हैं। उनकी एक पत्नी बाहर निकली और बोली—'आप मेरे पतिदेव को चाहते है ?'

मैंने मुस्करा कर उत्तर दिया—'अवश्य, उन्ही की तलाश में आया हूँ।

उँगली से सामने की ओर इशारा कर बताया—'वे है।'

मै निकट गया। देखा—एक टेबिल पर एक होल्डाल लिपटा रखा है और सर तथा पैर उसके बाहर हैं। वे सोये हुए है मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ, कि यह बिस्तर नही, मिस्टर पिल्ले है।

जगाने पर मालूम हुआ—दिन मे उन्होंने आज ज्यादा पी ली थी तबीयत भारी रही, इसीलिए इस प्रकार सो गये है।

मैंने अपनी मुसीबत कही और, उन्होने रास्ता बता दिया। मै सन्तुष्ट हो गया।

मैंने पूछा—'क्या तवीयत ठीक नही है ?

उत्तर मिला—'सो तो है ही। सैकडों की हानि भी हो गयी !

'वह कैसे ?' मैने प्रश्न किया।

'उससे आपका कोई सीधा सम्बन्ध नही है। उसे जाने भी दो मिस्टर बाञ्चू

मैं उन्हे नमस्कार कर घर लौट पडा। रास्ते मे सोचता आगे बढ रहा था कि आज वे इतने सुस्त क्यों थे—शायद किसी से रिश्वत मिलने वाली होगी, हाथ से शिकार निकल गया होगा ! दूसरा और कारण ही क्या हो सकता है ?

इतने मे मिल गए मिस्टर यज्ञदत्त। इनसे मेरी पुरानी जान-पहचान है। हरफ़नमौला आदमी है। उन्होंने पूछा—'क्यों भई, आप मिस्टर पिल्ले को कैसे जानते है ?'

'जानता कहाँ हूँ, जानने की चेष्टा कर रहा हूँ, किन्तु उन्होने मेरे सारे प्रयत्न बेकार कर दिये।'

'कैसे ?'

'कही पर भी उन्हे समझ नही पाया, आपकी बात का केवल इतना ही उत्तर हो सकता है। लेकिन मै चूकि उनसे दिलचस्पी लेता हूं, इसलिए उन्हे छोडना भी अच्छा नही लगता। कभी-कभी तो मुझे उन पर बडी दया आती है और विषय, प्रतिकूल परिस्थितियों से घिरा देख सहानुभूति भी

'अजी, आज तक तो मैं ही अपने को तीसमारखां लगाता था, लेकिन उन्होंने तो हम लोगों को भी पीछे छोड़ दिया।'

'क्या मैं भी आपसे उनके सम्बन्ध मे कुछ विशेष जानकारी प्राप्त कर सकता हूँ ?'

'तो सुनिये। लेकिन सब कुछ गोपनीय है।'

'कतई, बिश्वास रखिये।' मैंने उत्तर दिया।

मिस्टर यज्ञदत्त ने कहना प्रारम्भ किया—कल अपनी मित्र मण्डली के साथ हम लोग शबनम के यहा जा रहे थे। रास्ते मे मिल गये मिस्टर पिल्ले।

बोले—'मुमकिन है, मेरी उपस्थिति आप लोगों को अप्रिय मालूम हो।' उनके इस वाक्य का अर्थ था, यदि उन्हे प्रसन्नतापूर्वक नही ले जाया जायगा, तो उनके वहाँ पहुँचने का भी सन्देह किया जा सकता है। हम लोगों ने उन्हें भी ले लिया। वहां पहुचने पर हम लोग ताश खेलने और पीने-पिलाने में लग गये और मिस्टर पिल्ले लेटे-लेटे जाने क्या विचार करते रहे। पी चुकने के बाद उन्होंने अपने लेटने का स्थान चुना टेबिल, जिस पर शबनम बहुधा बैठ कर लिखा-पढा करती है। कुछ समय तो वे धैर्य से लेटे रहे और बाद में उठ खड़े हुए और अकचका कर बोले—मिस्टर यज्ञदत्त, मुझे आज्ञा दीजिये। अब न रोकिये, बिल्कुल न रोकिये। मैने पूछा—'क्यों ? क्या बात हो गयी ?"

'मिस्टर पिल्ले ने उत्तर दिया—'अभी-अभी आपके मिलने के पूर्व में व्राइट हाल रेस्ट्रोंराँ' मे चाय इत्यादि ले रहा था। मेरे हाथ मे बेग था और उसमे कुछ सरकारी कागजात तथा १५० रुपये। मै उसे वही भूल कर चला आया हूँ।'

'सभी कह उठे—'फौरन जाइये साहब, फ़ौरन ! यहाँ शिष्टाचार निभाने की अब आवश्यकता नही है'

मिस्टर यज्ञदत्त कहते रहे—'पिल्ले साहब वहाँ से खिसक आये। दूसरे दिन वे एक स्वर्णकार के यहाँ पहुँचे थे और अपनी पत्नी का हार बेच रहे थे। स्वर्णकार ने उसे कई बार कसौटी पर घिसा और उत्तर दिया—'साहब', यह चोरी का माल दिखता है। मुझे माफ कीजिये।

'दूसरे दिन की घटना मुझे उनके एक अन्तरग मित्र से मालूम हुई। मिस्टर यज्ञदत्त ने कहा—'इतनी ही नही, उसी दिन सध्या समय जब मैं मिस्टर पिल्ले के साथ वायुसेवन के लिए जा रहा था और शबनम की कोठी के नीचे से गुज़रा, तो ऊपर से आवाज आई—'आइये न साहब, आज हार नही ले जाइयेगा ? मैने सम्पूर्ण घटनाचक्र को समझ लिया।'

मिस्टर यज्ञदत्त की बाते सुनकर मै ठहाका मार कर हंस पडा और घर की ओर चल पडा। रास्ते भर मै मिस्टर पिल्ले के चरित्र की बारीकियों को सोचता रहा और घर आया तो देखा—पिल्ले साहब उपस्थित है। मैंने पूछा—'क्यों कैसे ?

बोले— पाँच रुपया दीजिये मिस्टर बाञ्चू। वाइफ को कालरा हो गया है और दवा दारू की व्यवस्था करनी है।'

मैं कुछ भी उत्तर न दे सका और जेब से सहानुभूतिपूर्वक पाँच रुपये निकाल कर उनकी भेंट कर दिये।

* * *

इधर मैं बहुत दिनों से मिस्टर पिल्ले से नही मिला; किन्तु सुनने मे आया, वे नौकरी से घूसखोरी के अपराध में, अलग कर दिये गये है।

लेकिन जैसे मिस्टर पिल्ले पर प्रभु की सदैव कृपा होती रही है। सन्ध्या को जब उस दिन मैं अपने मित्रों के साथ वायुसेवन के लिए जा रहा था, तो देखता हू—मिस्टर पिल्ले विचित्र ड्रेस में खडे है। मस्तक पर एक बैटरी लगा रखी है। शरीर सूट-बूट से लैस है। सर पर बढिया नाइट कैप है। एक बूढा सेवक खजूर का बडा पखा पीछे खडा झल रहा है। वे उच्चकोटि के मजन बेच रहे है। और दूर की हाँक रहे है।

मैं जो अनायास वहाँ जा खडा हुआ तो उनकी दृष्टि मुझ पर आ पडी। अपने चारों ओर खडी भीड को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—'हाथ कंङ्गन को आरसी क्या? आप सब लोग मिस्टर बाञ्चू के दाँतों को देख सकते है। कैसे स्वच्छ और मोती जैसे दाँत है? इनका सौन्दर्य इनके दाँत है। ये मेरे पुराने ग्राहक है और सदैव मेरा ही मंजन प्रयोग में लाते है।' इतना कह चुकने के बाद वे मेरे दाँत खोल कर भीड को दिखलाने लगे।

भीड मेरी ओर देखने लगी। मिस्टर पिल्ले ने कहा—'कहिये न साहब आपको मेरा मजन लगाते कितने वर्ष हो गये?'

मेरे मुह से अनायास ही निकल गया—'कई वर्ष!'

लोग मजन की शीशियों को खरीदने लगे और पिल्ले साहब बिक्री में जुट गये। मैंने अवसर पा कर राह ली। अपनी कमजोरी पर मुझे तरस आ रहा था, परन्तु कर ही क्या सकता था? यह विवशता की असमर्थता थी

* * *

लगभग पन्द्रह दिन पश्चात् चौराहे पर काफी भीड थी। मै दफ्तर से घर लौट रहा था। पुलिस कई व्यक्तियों को घेरे खडी थी। उत्सुकतावश

मै अपनी माइकिल रोक कर नीचे आ गया। एक व्यक्ति ने पूछा—'भाई क्या बात है ?

'काबुली लड रहे है

'क्यों ?'

'पता नही !

मै भीड के निकट-जा पहुँचा। दूर से देखा—काबुली खून से लथपथ है। इसी बीच कान मे आवाज पडी—'मिस्टर बाञ्चू, मिस्टर बाञ्चू !

मैंने घूम कर देखा, तो मुह से निकल गया—'मिस्टर पिल्ले ! क्या बात है ? यह सब क्यों ?'

'इसकी परवाह क्या ? अच्छे मौके पर मिले, सुनो तो !

मै मिस्टर पिल्ले के निकट आ गया। उन्होने कान मे कहा—'घर मे कह देना जाकर, मै तीन महीने के लिए कलकत्ता गया हूं। इस घटना का क़तई ज़िक्र न करना, हाँ ?

मैंने सर हिलाते हुए अपनी स्वीकृति दे दी। फिर मिस्टर पिल्ले गरम पडे और काबुली वाले की ओर देख कर बोले—'कच्चा खा जाऊँगा, कच्चा ! समझा क्या है तूने मुझे ! तेरा काम है, देना और मेरा काम है लेना ! लेकर भी कोई वापस देता है ? वह कोई दूसरे होगें ?'

भीड मिस्टर पिल्ले के साहस पर दग थी। लोग कह रहे थे—'अच्छा आज काबुली को व्याज दिया है इस पट्ठे ने !. हिन्दुस्तानी जनता को ये लूटते है, लूटते। इनके साथ इसी तरह पेश आना चाहिए।'

.काबुली और मिस्टर पिल्ले पुलिस की लारी में बैठ गये। लारी चलने लगी, तो मिस्टर पिल्ले ने प्रसन्नता पूर्वक मेरी ओर देखा और कहा—'अच्छा, चले दोस्त, अलविदा !'

इसके बाद कानपुर से मेरी बदली बनारस हो गयी। मै अपनी पारिवारिक समस्याओं में ऐसा उलझा कि मिस्टर पिल्ले को केवल भूल ही भर नही गया, बल्कि ऐसा अनुभव हुआ मुझे जैसे मेरा उनसे न कभी परिचय था और न कोई किसी प्रकार की जान पहचान ही ! कभी भी उनका काल्पनिक चित्र मेरे स्मृति पट पर भूल से भी नही प्रतिबिम्बित हो सका।

एक दिन, सन्ध्या समय, अपनी आवश्यक वस्तुओं को खरीद कर घर लौट रहा था। मैंने देखा—सामने मोटर साइकिल पर, फौजी पोशाक मे, मिस्टर पिल्ले

आश्चर्य से एक बार चकित हो गया। हाथ अपने आप—मोटर साइ-किल को रोकने के लिए उठ गये।

साइकिल रुक गयी। मिस्टर पिल्ले ने फ़ौरन ही पहचान लिया। बोले—'हल्लो मिस्टर बाञ्जू! यहाँ कैसे?'

'बदली हो गयी है।' मैंने उत्तर दिया।

अंग्रेजी मे उत्तर दिया—'बहुत अच्छा हुआ। आओ, बैठो, साथ चलो!'

मैंने कहा—'कहाँ जाना है?'

'बॅगले। बैठो, चलो!'

मै साइकिल पर बैठ गया। उस क्षण मेरी विचित्र स्थिति थी। मोटर साइकिल तेजी से दौडती एक सुन्दर बॅगले के सामने आकर लग गयी। मिस्टर पिल्ले ने कहा—'यह है मेरा गरीबखाना। मै यहाँ का सीनियर मार्केटिंग इन्सपेक्टर हूँ। जमाना बदल गया!'

मेरे मस्तिष्क मे वह चित्र नाच उठा, जब एक दिन मिस्टर पिल्ले पुलिस लारी मे, अपराधी के रूप मे, बडे घर जाने की तैयारी कर रहे थे। मै ठहाका मार कर हंस पडा। मेरे मुह से अनायास ही निकल गया—'मै आपको ~~आपकी सफलता के लिए~~ मुबारकबाद देता हूँ।'

और टेबिल पर चाय हम लोगों की प्रतीक्षा कर रही थी।

# चुनौती

[ श्री विष्णु प्रभाकर ]

बद्रीनाथ यात्रा का महत्व प्राचीन काल में चाहे कितना ही प्राकृतिक रहा हो, पर आज वह केवल धार्मिक है। यात्रियों की श्रेणी इस बात का प्रमाण है। सरकारी खर्च पर लोक परलोक बनाने वाले अधिकारियों को छोड़ कर अधिकतर बूढे स्त्री, पुरुष, विधवाएं या वीतराग अथवा और किसी प्रकार से दुखी व्यक्ति ही मुक्ति की प्यास लिए, अपने थके और जर्जर चरणों से उस विकट मार्गको नापते देखे जाते है। और फिर इन लोगों की यात्रा की अन्तिम सीमा बद्रीनाथ के मन्दिर पर पहुंच कर समाप्त हो जाती है। उससे दो मील आगे भारतभूमि के अन्तिम गाव 'माना' या पांच मील आगे के हिम-प्रपात वसुधारा को देखने कोई विरला ही जाता है। सतोपन्थ और अलकापुरी जाने की तो कल्पना करना भी दूर की बात है।

हमारे गोपाल बाबू इनमें से किसी श्रेणी में नही आते। शरीर से क्षीण होने पर भी उन्हें वृद्ध नहीं कहा जा सकता। वीतरागी भी वे नहीं हैं; क्योंकि धर्म के नाम से वे उसी प्रकार भडकते हैं जिस प्रकार सांड लाल कपडे से। इसलिए जब उन्होंने उत्तराखंड के दुर्गम पथ को ग्रहण किया, तब एक धर्म-भीरु वृद्धा ने यही सब देख कर उनसे पूछा—"बेटा ! तुम कहां जा रहे हो? तुम्हारी तो अभी यात्रा करने की उमिर है नही।"

गोपाल ने उत्तर दिया—"मा ! म यात्रा करने नहीं आया हूँ।"

तब चकित स्वर में वह वृद्धा बोल उठी—"यात्रा करने नहीं आये, तो आये किसलिए हो?"

"प्रकृति से प्रेम करने।"

वह धर्म-भीरु वृद्धा इस उत्तर का अर्थ क्या समझती। हँस कर रह गई। परन्तु गोपाल ने सारी यात्रा में इस प्रकृति-प्रेम का खुल कर परिचय दिया।

यहाँ तक कि बद्रीनाथ पहुँच कर भी उसने मन्दिर में होने वाले उत्सवों में कोई रुचि नही ली। किसी तरह रात बिता कर वह सवेरे ही वसुधारा के लिए चल पडी। उसका मित्र आनन्द सपरिवार उसके साथ था। और गोपाल उनके साथ था, यह कहे तो अधिक सत्य होगा। क्योकि आनन्द एक बडा सरकारी अधिकारी था और निरीक्षण के कार्य से उधर जा रहा था। अच्छा साथ रहेगा—यह समझ कर गोपाल उसके साथ हो लिया था। वैसे उसका साथ बहुत सीमित था। ठहरने और खाने की सुविधा ने उन्हें बाँध रखा था। नही तो गोपाल सदा सब को छोड कर प्रकृति से प्रणय करने की धुन में आगे बढ़ जाता था। वसुधारा के मार्ग पर भी उसने सब को पीछे छोड देना चाहा, पर तभी आनन्द ने पुकार कर कहा—"अरे गोपाल! क्या पितरो को पानी भी नही दोगे?"

गोपाल ठिठका। बोला—"कैसे पितर? तुम कहना क्या चाहते हो?"

"वह देखो, तुम्हारे दाहिने हाथ पर, अलखनन्दा के किनारे, उस शिला पर अँजलि की मूर्ति अंकित है

"हाँ वह है तो..

"वह ब्रह्मकपाली है। कहते हैं, यहाँ स्वर्गद्वार से अंजलि फैला कर पितर लोग अपने वशधरो से पिण्डदान ग्रहण करते है।"

गोपाल ने हाथ की लाठी पर अपनी समस्त देह को तौलते हुए जवाब दिया—"आनन्द। मैं पुण्य अर्जन करने नही, ज्ञान-अर्जन करने आया हूँ।" और यह कह कर वह रुका नही, आगे बढ गया।

तब तूफानी हवा थम चुकी थी। आकाश मे कही कोई मलीनता नहीं थी। मेघ थके पथिक की भाँति हिम-शिखरों पर आराम कर रहे थे। दिशाएं निखरी नीलिमा से मुखरित हो रही थी और अरुण किरणों का मुकुट पहन कर कैलाश की गरिमा नव वधू की ,तरह मुस्करा उठी थी।

गोपाल जिस मार्ग पर चल रहा था, वह अलखनन्दा के दाहिने किनारे पर, नारायण पर्वत के चरणों में, दूर तक समतल भूमि पर चला गया था। इस ओर कहीं-कही आवास-गृह थे उस ओर नर-पर्वत के आंचल में दूर-दूर तक ऊँची-नीची भूमि पर अनेक भेड-बकरियाँ और घोडे चर रहे थे। उन्हें देख कर सहसा गोपाल को याद आया, यही कही श्याम-कर्ण घोडे दिखाई

देते है। तब उसने दृष्टि गडा कर दूर-दूर तक उन अलौकिक जीवो को खोजना शुरू किया और फिर कुछ क्षण बाद वह एकदम लज्जित हो कर हंस पडा मै भी कैसा मूर्ख हूँ। जो नही है उसी को खोज रहा हूँ !"

तब भीतर का गोपाल यह सोच कर और भी तेजी से हसा—"जो नही है, उसी को तो खोजा जाता है। उसी की खोज के लिए ज्ञान का समस्त उपयोग है।"

गोपाल का अन्तर जैसे हिल उठा—"विश्वास-अविश्वास का यह कैसा सघर्ष है ! यह कैसा देवासुर सग्राम निरन्तर चलता रहता है। ऊपर से जो कुछ है, उसका बिल्कुल उल्टा ही क्यों अन्तर मे रहता है ? अहकार, व्यक्ति-स्वातंत्र्य, दम्भ, इनमे क्या बहुत अधिक अन्तर है ? अन्तर की कुरूपता, मालिन्य और सन्देह—ये ही क्या बाहिर के दम्भ के दूसरे रूप नही हैं ! हाय रे नगण्य पुरुष ! तू क्या नगाधिराज के इस विराट रूप के सामने अपनी अहन्ता की विफलता को स्वीकार नही करेगा ! ! . . . .

"नही . . नही . .।" गोपाल ने मानो चीख कर कहा—"नहीं, मनुष्य दीन नही है, लघु नही है, वह यहाँ है; और यही उसकी महानता का प्रमाण है।"

वह इसी सघर्ष मे तल्लीन था कि आनन्द ने उसके कन्धे को छूकर कहा—"वह देखो गोपाल, तुम्हारे अध्ययन की एक वस्तु . . . . . .।"

"क्या ?" गोपाल चौका।

"वह देखो वह पक्षी।"

गोपाल ने उसी दिशा मे देखा—एक कौवे जैसा पक्षी है, पर उसकी चोंच और पजे लाल है।

उसने तब दूरबीन से बहुत-से ऐसे पक्षी खोज निकाले और जब चुकन्दर जैस रगवाली एक युवती पुआल का अपेक्षाकृत बडा बोझ पीठ पर लिये पास से गुजरी तो, उसने पूछा—"क्यों जी, यह कौन पक्षी है ?"

प्रश्न सुन कर युवती नीची दृष्टि किए हुए मुस्कराई और हट कर खड़ी हो गई। न बोली; न आगे बढी। परन्तु पीछे-पीछे एक प्रौढ़ा आ रही थी। उसी युवती का सान्ध्य रूप उसे कह सकते हैं। झरने की तरह हँसती हुई बोली—"क्या पूछते हो, बाबू जी ?

"यह कौन पक्षी है?"

"क्यागं चू। तिब्बती कौवा।

"तभी चू-चू करता है।" गोपाल ने हँसते हुए कहा।

नारी तो हंस ही रही थी। उस हँसी से प्रोत्साहित हो कर गोपाल उससे प्रश्न-पर-प्रश्न करने लगा। वह भूल गया कि उसे वसुधारा जाना है। ज्ञान की प्यास ने उसके इस ज्ञान को मोह के कुहरे से ढक दिया। वह जब जागा तब उसके साथी नीचे पुल तक पहुँच चुके थे।

वह तेजी से आगे बढा, इतनी तेजी से कि उसे भागना पडा। उसने उस निरन्तर झूले से झूलते रहने वाले पुल को पार किया। फिर 'माना' गाव की प्राणायाम वाली चढाई चढ कर जैसे ही वह सरस्वती नदी क तट वाली बटिया पर आया, वैसे ही बादलो ने गर्जन-तर्जन के साथ आकाश को घेर लिया। अरुण का स्वर्णिम किरण-जाल छिन्न-भिन्न हो गया और ठडे कुहरे ने पृथ्वी को निगल जाने के लिए सुरसा की भांति मुह फाडना शुरू कर दिया। कि तभी उसे एक और नारी दिखाई दी। वही झरने-सी हँसी और गहरी सन्ध्या सी लालिमा। पूछा—"वसुधारा कितनी दूर है?"

"वह सामने है—दो माइल।"

"मार्ग क्या बहुत विकट है?"

"न, न, सीधा है। जिस पर तुम जा रहे हो। बस, बिल्कुल ऐसा।"

"धारा में बहुत ऊँचे से पानी गिरता है?"

नारी हँसी और—"हाँ, पर सब पर नही गिरता। जो असली मां-बाप के है उन्ही के मस्तक पर धार गिरती है।"

कह कर वह फिर हँसी और पास के खेत मे गायब हो गई।

गोपाल को लगा, जैसे दिशाएं हँस उटी हो। पर यह उसने क्या कहा! उसने भी कही ऐसा ही पढा था। बस, उसकी गति अनजाने ही शिथिल पड गयी। वह सोचने लगा—"जो असली मा-बाप के है, उन्ही के मस्तक पर धार गिरती है। जो असली मा-बाप के हैं....जो....।" कि सहसा उसका ध्यान सुदूरभूत मे जा पहुँचा—"द्रोपदी सहित पाण्डव जब युगों पूर्व इसी मार्ग से अलकापुरी गये थे, तब क्या यह धारा उन सब के मस्तक पर न गिरी होगी? क्या व . .? नही-नही।... यह सब पाखण्ड है, ढोंग

है। मूर्खता की चरमसीमा है।" उसने तीव्रता से कहा। और वह दूरबीन से सामने फैले हिमप्रदेश को देखने लगा। आगे इसी मार्ग पर सतो पथ है। जहा मानिनी द्रोपदी ने प्राण विसर्जित किये थे और अलकापुरी है, जहाँ युधिष्ठिर ने कुत्ते को लेकर धर्मराज की उपाधि पाई थी। अच्छा, तो क्या इसी अलकापुरी मे क्या इन्द्र का साम्राज्य था? क्या नर-नारायण के तप से डर कर इसी इन्द्र ने मेनका को उनका तप भग करने के लिए भेजा था? तब उस दिन यह भयानक हिम-प्रदेश नारी के नूपुरो की झंकार से किस प्रकार झकृत हो उठा होगा! प्रकृति का यह गैरिक रूप, उस प्रज्वलित वासना का स्पर्श पा कर किस प्रकार इन्द्र धनुष की आभा-सा चमक उठा होगा! और .... और क्या इस धारा की बूदे उन सब के मस्तकों पर न गिरी होंगी?.....

वह जोर से हँसा—क्या वे सब वर्णशकर थे? उन्हे माता-पिता की चिन्ता नही थी? यहा तक कि वे प्रतापी वसु भी, जिनका नाम इस धारा को मिला है, पूछने पर अपनी माता-पिता का नाम न बता सके होंगे? और रूप की रानी वह उर्वशी? वह सौदर्य की प्रतिमा! वही कुछ दूर उर्वशी-कुण्ड पर उसका जन्म हुआ था। उसके मस्तक को भी तो इस धारा ने कभी नहीं छुआ होगा।

"अभागिन धारा!" उसने आकण्ठ सहानुभूति से भर कर कहा और वह हँस पडा। "यह मनुष्य कितना प्रपंची है! उफ! कैसा छकाया है उसने संसार को!!"

वह तब एक बहुत ही सँकरे मार्ग पर आ गया था। एक ओर विशाल शिला-खण्ड थे। दूसरी ओर अलखनन्दा का अतल। वह ठिठका। क्षण-भर रुक कर उसने उर्वशी की जन्मभूमि को देखा। "वह अनुपम सौन्दर्य क्या इसी भयानकता के गर्भ से प्रकट हुआ था? सुना है वहाँ सामने भोजपत्र के वन में कस्तूरा रहता है। सुगन्ध और सौन्दर्य दोनों की जन्मभूमि तनुता (नाजुकता) से कितनी दूर है? पर....पर....हा, ठीक तो है। उसने एकदम सम्भल कर कहा—"जिसे मै भयानकता कह रहा हूँ, क्या वही पुरुष के पौरुष की कसौटी नही है? क्या वे सुगन्ध और सौन्दर्य को भोगने के अधिकारी पुरुष नही है जो प्रकृति की रुद्रता को अपने पौरुष से मधुरता मे बदल देते हैं?"

तब गोपाल मुस्कराया—"तब वसुधारा के जलकण उन पुरुषों का निस्संदेह अभिषेक करते होंगे। क्योंकि पौरुष ही तो किसी के माता-पिता के गुण-अवगुण की कसौटी है।"

अपनी इसी खोज से गोपाल गर्व से भर उठा। पर उसी क्षण पास के खेत से निर्झर सी हँसी फूट पडी। देखा—एक यवती है। पर इससे पूर्व कि नेत्रों का सम्मिलन हो, वह बिजली-सी दूर जा चमकी। उस निर्जन में गोपाल को लगा, जैसे उर्वशी हँस रही है। हँसे जा रही है। इधर-उधर, यहाँ-वहाँ सब कही कैलाश मे उसकी यही हँसी व्याप्त है। क्षण भर रुक कर वह फिर आगे बढा कि वह फिर ग्रीवा उठा कर खिलखिला पडी। गोपाल फिर ठिठका। तब सहसा उसकी दृष्टि उसे खोजते-खोजते खत की पक्की मेड पर जा कर अटक गई। देखा वहाँ दूरबीन रखी है। ओ ! विचारों में वह इतना खो गया था कि उसे छोड ही जा रहा था। "तो क्या उसकी इसी भूल पर वह निर्झरणी फूटी थी ?" उसने मुस्करा कर कह दिया—"तुमको बहुत धन्यवाद, निर्झरणी !"

और हृदय मे उत्साह लिये वह आगे बढ गया। तभी हर्षातिरेक से आनन्द ने पुकार कर कहा—"गोपाल। देखो वह वसुधारा।"

"कहां" गोपाल बोला और तभी देखा—दूर एक शिखर से जल की पतली-सी धार गिर रही है। कभी वह वायु के साथ अठखेलियाँ करती है, कभी आँखों से ओझल हो जाती है।

प्रथम दर्शन बहुत अच्छा नही लगा। कहाँ न्यागरा और जोग के जल प्रपात और कहाँ ये क्षुद्र जलकण ! क्या यही पुराण-प्रसिद्ध आठ वसुओं की धारा है ? क्या यही मनुष्य की वर्णशकरता का निर्णय करती है ?

वह सोच रहा था और दौड रहा था। वह अब एक मैदान को पार कर चुका था और सामने का मार्ग नाना रूप-रूपाय शिला-खण्डों से भरा पडा था। वह उन पर तेजी से दौडने लगा। पर मार्ग का अन्त नही आ रहा था। उसने घडी देखी। गाव छोडे एक घंटा हो चुका था। पर दो माइल अभी समाप्त नही हो रहे थे। तब उसने एक व्यक्ति को देखा, जो उधर से आ रहा था। पछा—"वसधारा कितनी दूर है ?"

दो माइल उसे उत्तर मिला।

"अब भी दो माइल दूरी बनी ही रही !" उसके मुह मे निकल गया।

'जी हाँ। रास्ता जो बहुत विकट है।"

यह स्थिति उसके लिए एक चुनौती थी। गोपाल एक बार झिझका। उसने एक गहरी साँस ली। फिर इधर-उधर देखा। बादल आकाश को घेर कर धरती की ओर बढ रहे थे। बस, वह तेजी से दौडने लगा। आनन्द ने उसका अनुकरण किया। दूरबीन और कैमरा सब उन्होंने बन्द कर लिये। पर नारी-वर्ग अब भी पीछे था। उन्हे बार-बार रुकना पडता था। दूर दूर तक फैले हुए पत्थरों पर चढते-उतरते उनके पैर दुखने लगे थे और ठण्डा कुहरा जो बराबर बढता आ रहा था, हृदय मे धुकधुकी पैदा करने लगा था। आनन्द ने पास आ कर कहा—"गोपाल। तुमने एक विचित्र बात सुनी ?"

"क्या ?"

"वसुधारा के छींटे उसी पर पडते ह जो वर्णशकर नही होता।"

गोपाल तेजी से हँसा। वह बोला—"मैंने भी सुना है। पर यह सब पाखण्ड है, निरा पाखण्ड।"

"सो तो है ही। सो तो है ही।" आनन्द ने कह दिया—"पर मै सोचता हूँ—मनुष्य का मस्तिष्क क्या-क्या षडयन्त्र रच डालता है !"

दोनों फिर हँसे। अब वे प्रपात के बिल्कुल पास आ गए थे। एक चढ़ाई और फिर नीचे घाटी से हो कर प्रपात के प्रत्यक्ष दर्शन। वह शीघ्रता से ऊपर चढा और फिर नीचे उतरने लगा। अभी-अभी वहाँ पहाड टूट कर सरक गया था। उसी के पद-चिह्नो पर वह सभल-संभल कर पग रख रहा था। कभी-कभी हाथ भी रख लेता था। उस क्षण उसके हृदय में भय भी था, उल्लास भी था। वह किसी भी क्षण गिर कर शिला-खण्डों से टकरा सकता था। पर उसके सामने अब प्रपात बिल्कुल स्पष्ट था। उसने उसके बहते जल का स्पर्श किया। जैसे प्राण सिहर उठे। उसे याद आया कहीं लिखा था—"जो वसुधारा मे स्नान करेगा, उसे मुक्ति मिलेगी।"

"निस्सदेह उसे मुक्ति मिल सकती है—जीवन से मुक्ति।" वह फुस-फुसाया और नृत्य करती धारा के पास जाने के लिए फिर पत्थरों पर चढ़ने लगा। "पर मैं मुक्ति नहीं चाहता।"

वह अब वसुधारा के ठीक नीचे आ गया था। उसकी दृष्टि ऊपर को उठी हुई थी। ऊपर, बहुत ऊपर से, जल की एक धारा उछल-उछल कर नृत्य करती हुई नीचे चली आ रही थी। वायु रह-रह कर उसे छेड़ देती और तब वह हँसती-हँसती उसके पीछे दौड पडती। गोपाल मंत्र-मुग्ध-सा यौवन की उस क्रीडा को देखता रहा। फिर न जाने क्या हुआ? जैसे किसी ने फुसफुसा कर उसके कान मे कह दिया—"तुम वर्णशंकर हो।"

"क्या?"

"हाँ। तुम्हारे मस्तक पर वसुधारा की फुहार नहीं पढ रही है।"

गोपाल के हाथ उठे। उसने मस्तक को सहलाया। फिर सहसा सामने के उन शिला-खण्डो को देखा, जो सुचिक्कण, धूमिल हिम को मस्तक पर धारण किये अल्हडता से एक दूसरे का सहारा लिये जल-धारा के बीच में लेटे हुए थे। उन पर चढना कठिन ही नही, असाध्य था। उसके सामने दीवार पर चढना मानो मखमल पर चलना था। परन्तु... ..

गोपाल मुडा। उसने आनन्द को देखा—सुडौल शरीर, आजानुबाहु, उन्नत ललाट, विशाल वक्षस्थल, सुदृढ पग ..मस्तिष्क मे तूफान उठा—आनन्द बडी सरलता से इन पत्थरों पर चढ सकता है।.. वह चढेगा—धारा उसके मस्तक का अभिषेक करेगी. ..और वह... वह. ..।"

गोपाल काँपा। जीवन में पहली बार उसे अपनी लघुता का अनुभव हुआ। वसुधारा उसके समूचे अस्तित्व को चुनौती देती जान पडी। उडती फुहारों के मिस मानो उसने अट्टहास करते-हुए कहा—"तुम वर्णशकर!.. गोपाल तुम वर्णशकर!!.. हा ...हा... हा.... तुम वर्णशंकर.. वर्णशकर!!!"

जैसे भूचाल आ गया हो। धारा डोल उठी। गोपाल ने यत्रवत भयक गति से पत्थरों पर कूदना शुरू कर दिया। कुछ ही देर में वह वहा पहुँच गया, जहाँ धारा सीधी गिर कर एक बडे शिलाखण्ड से टकराती थी। और फिर सहस्रो खण्डों से हो कर वायु के साथ-साथ चारों ओर बिखर जाती थी। तब ठण्डे कुहरे की असंख्य विन्दुओं ने उसे तर कर दिया। उसका अन्त आनन्द मे भीग गया। वह चिल्ला उठा—"मै वर्णशकर नही हूँ! मै वर्णशकर नही हूँ

उस आनन्द में वह कई बार चढा और नीचे उतरा। फिर जैसे कुछ याद आया। शीघ्रता से दूर बैठे आनन्द के पास जा कर वह बोला—"आनन्द ! क्या तुम वसुधारा के पास नहीं जाओगे ?"

आनन्द ने शान्ति से जवाब दिया—"नही।"

"नही.....!"

"हाँ गोपाल ! हम तुम क्या इतने मूर्ख है कि इस क्षुद्र जलधारा से अपने माता-पिता के पाप-पुण्य का निर्णय करवाएंगे। ऊँहूँ ! ....तुम ठीक कहते थे—यह सब पाखण्ड है, निरा पाखण्ड।"

और फिर टिफ्नदान खोलते हुए कहा—"आओ—भोजन कर लो ठण्डा कुहरा पास आ गया है। कुछ ही क्षण मे बर्फ गिरने लगेगी।"

गोपाल तब था भी और नही भी। उसका उल्लास तब जैसे उन शिला-खण्डों से टकरा-टकरा कर चीत्कार कर रहा था। उसकी ज्ञानार्जन-क्षुधा जल-बिन्दुओं के साथ उड कर उसकी खिल्ली उडा रही थी !

# अर्थी के आँसू

[श्री मोहनसिंह सेंगर]

जब सब लोग चले गए, तो प्रतिभा न दबे पांव मां के कमरे में प्रवेश किया और इधर-उधर देख कर धीरे से बोली—"मां आखिर मेरी शादी को लेकर तुम लोग इतने परेशान क्यों हो? क्या सचमुच मै इतनी भारी हो गई हूँ तुम सब के लिए? अगर ऐसा ही है तो कुठौर फेंकने से कही ज्यादा अच्छा तो यही है कि मुझे किसी नदी कुएँ मे ही ढकेल दो, पाप कटेगा।"

मां ने अन्यमनस्क भाव से, पर एक फीकी मुस्कराहट के साथ, प्रतिभा को खीच कर अपने गले से लगा लिया और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोली—"तू तो सचमुच बडी भोली है, बेटी। अरे, लड़किया तो पराया धन है ही। बडी होने के बाद भला उन्हे कोई अपने पास रखता है?"

"हां, तो मै कब कहती हूँ कि तुम मुझे अपने पास ही रखो।" रुँधे हुए गले से प्रतिभा ने कहा—"कह जो रही हूँ कि किसी नदी कुएँ में धक्का न दे दो, सब आफत मिट जायेगी।"

इस बार मां ने प्रतिभा को अपने गले से हटा कर सामने खडा किया और उसकी आखों मे आंखे डाल कर बोली—"पागल मत बन, प्रतिभा। मैंने कभी तेरी इच्छा के खिलाफ कुछ काम किया या तुझसे कभी कुछ करवाया है? क्या कभी भी तेरे साथ मैंने कोई दुर्व्यवहार किया है? फिर तेरी इस तानेजनी और इन आसुओं का मतलब?"

एक सिसकी भर कर प्रतिभा ने आंखे झुका ली और भर्राई हुई आवाज में बोली—"मतलब तुम सब जानती हो मा।"

तनिक झल्ला कर मां ने कहा—"भई तुझसे तो पेश आना भी मुश्किल है। तुझे मालूम नहीं, तेरे पिताजी ने कितने दिनों से खाने-पीने और सोने-

आराम करने का खयाल छोड़, रात-दिन एक कर तेरे लिए इतना अच्छा घर-वर ढूंढा है। क्या इसे तू कुठौर ही समझती है ?

"मैं कुछ नहीं समझती"—तनिक आवेश में आकर प्रतिभा ने कहा—"केवल यह समझती हूँ कि मैं अभी शादी नहीं करना चाहती। मैं अभी कुछ दिन और पढ़ना चाहती हूँ।"

"शादी नहीं करना चाहती ! आगे पढ़ना चाहती हूं ! !" मा ने जरा ताने के साथ कहा—"यह कहना बड़ा आसान है, बेटीजी। पर क्या तुम्हें आटे-दाल का भाव मालूम है ? क्या तुझे मालूम है कि इस महगाई के जमाने में घर—गृहस्थी चलाना कितना कठिन हो गया है

"तो साफ-साफ यों कहो कि तुम मेरी आगे की पढ़ाई का खर्च नहीं देना चाहती।"—प्रतिभा ने तीखे स्वर में कहा।

प्रतिभा, तुम पढ़ी-लिखी हो, बेटी। मेरे मुह से क्या-क्या कहलवाओगी ? तुम जानती हो कि तुम्हारे दोनों भाइयों का दूध बन्द कर दिया गया है। तुम्हारी शादी के लिए तुम्हारे पिताजी ने जो २-३ हजार रुपया बैंक में जमा किया था, महंगाई ने उसे भी पचा लिया। इन दिनों में कभी गौर से उनका चेहरा देखा है तुमने ? चिन्ता और उदासी की झुर्रियां क्या कभी तुम्हें नहीं दिखाई दी उनके चेहरे पर ? हाय भगवान् !

'छि: छि:'—कहते हुए प्रतिभा के पिता ने कमरे में प्रवेश कर कहा—"यह क्या झगड़ा मोल ले बैठी तुम मा-बेटी। मेरे चेहरे की झुर्रियों से और प्रतिभा से भला क्या मतलब ? क्या आदमी कभी बड़ा नहीं होता ?" और फिर हंस कर बोले—"प्रतिभा की मा, तुम्हारी तरह मैं भला हमेशा जवान थोड़े ही बना रहूँगा !"

प्रतिभा की मां जरा लजा गई। प्रतिभा ने धोती के छोर से आसू पोंछे और कमरे से बाहर जाने लगी; पिता ने द्वार की ओर बढ़ कर प्रतिभा का रास्ता रोकते हुए कहा—"जरा ठहरो, प्रतिभा। मैं तुम्हीं से कुछ बात करने आया हूं। तुम मन खराब न करो। मैंने गौरीशंकर और उनके बड़े भाई से खूब जोर देकर और खोल कर कह दिया है कि वे तुम्हारी आगे पढ़ने की इच्छा पूरी करेंगे और इस दिशा में कोई अड़चन पैदा नहीं करेंगे। बोलो अब तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं ?"

प्रतिभा कुछ नही बोली। उसकी आखें नीचे ही झुकी रही। पिता ने फिर कहना शुरू किया—"सिर्फ खर्चे का ही सवाल नहीं है, बेटी। तुम अब सयानी हो गई हो। लोग पूछते है कि अभी तक प्रतिभा की शादी क्यों नही की ? पता नही, इन्हे दूसरों की शादी मे इतनी दिलचस्पी क्यों है ?"

"अच्छी ही तो बात है"—प्रतिभा ने धीमी आवाज मे कहा—"आप, लोगो को खुश-सतुष्ट कर के, अपनी मान प्रतिष्ठा की रक्षा कीजिए। इसमे भला मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ?" यह कह कर प्रतिभा कमरे से बाहर चली गई।

पिता ने कुछ चिंतित-सी मुद्रा मे प्रतिभा की मा की ओर देखा और निराश स्वर मे बोले—"हायरे भाग्य ! अपनी ही सन्तान के मुँह से क्या ऐसी बाते सुनना ही हमारे भाग्य मे बदा था ?"

"तुम अपना मन खराब मत करो"—प्रतिभा की मा ने आश्वस्त स्वर मे कहा—"आजकल का जमाना ही ऐसा है। पता नही पढ-लिख कर ये लडकिया क्या करेंगी ?"

प्रतिभा के पिता ने एक गहरी ठण्डी सास ली और धीरे-धीरे कमरे से बाहर चले गए।

[ २ ]

"बहू क्या कहती या चाहती है, इससे मुझे कोई सरोकार नही"—गौरी शंकर के बडे भाई ने कहा—"पर मै यह पूछता हूँ कि तेरे भी तो अक्ल है, तेरा मन क्या कहता है ?"

"भैया"—गौरीशकर ने नम्रतापूर्वक कहा—"होगा तो वही, जो आप और माता जी आज्ञा देगे ; पर मै समझता हूँ कि अगर उसे पढने-लिखने की सुविधा दी जाय, तो इसमे हर्ज ही क्या है ?"

"हर्ज ही क्या है ?"—आखें मटका कर बड़े भाई ने कहा—"नई-नई बहू मिली है, इसी से तू उस पर लट्टू है। पर कान खोल कर सुन ले—अगर तूने उसे दबा कर नही रखा, ज्यादा पढाया-लिखाया और आजादी दी, तो याद रख, एक दिन तुझे पछताना पड़ेगा—और खानदान के नाम पर जो बट्टा लगेगा, वह अलग से !"

गौरीशंकर अभी नई उम्र और कच्चे ज्ञान का युवक था। बडे भाई की चेतावनी की गहराई को शायद भलीभांति समझ तो नही पाया, पर इतना उसे जरूर महसूस हुआ कि उसका कुछ अर्थ जरूर है। हतप्रभ-सा वह चुप-चाप वहां से अपने कमरे की ओर चला।

कमरे से बाहर पाव रखते ही उसने देखा कि प्रतिभा चौखट के सहारे खडी सारी बातें सुन रही थी। उसके बाहर आते ही बिना कुछ बोले ही वह भी उसके आगे आगे कमरे की ओर चल पडी।

कमरे मे पहुँच कर प्रतिभा दाहिनी ओर की दीवार का सहारा ले कर खडी हो गई और शून्य दृष्टि मे छत की ओर अपलक निहारने लगी। गौरी-शकर ने पास आ कर कहा—"तुमने भाई साहब का फैसला सुन लिया।"

"सुन लिया"—उसी प्रकार छत की ओर देखते हुए प्रतिभा ने कहा।

गौरीशकर चुप हो गया। क्या कहे, कुछ समझ में नही आ रहा था। प्रतिभा ने फिर कहना शुरू किया— मा के मुह से, पिताजी के मुंह से, जेठ जी के मुह से, और शायद तुम्हारे मुह से अभी सुनना बाकी है—एक ही बात निकलती है लडकी को ज्यादा पढाना अच्छा नही ? पढ-लिख कर वह हाथ से निकल जायगी ! ! उफ, कितने सकीर्ण और अदूरदर्शी हो तुम लोग ? जो स्वय सुशिक्षित नही, जिनके अपने मानस और चरित्र का विकास नही हुआ, वे इसके सिवा भला सोच ही क्या सकते है।" और फिर पास खडे गौरीशंकर की ओर मुखातिब होकर प्रतिभा ने जरा आवेश के स्वर में कहा—"मैं जानती हूँ, तुम लोग क्यों मुझे आगे पढने नही देना चाहते। पैसे का प्रश्न उतना नही है, जितना तुम्हारी सडी-गली मान्यताओं, कुसंस्कारों और अन्धपरम्पराओं का। तुम सोचते होगे कि घर की चहारदीवारी में बद स्त्री पाव की अच्छी जूती, आज्ञाकारी बादी और उन झूठे आदर्शों की रक्षा करने वाली निरीह वह बनी रहेगी, जो आज नारी-स्वातंत्र्य के मार्ग में सब से बडी बाधा है। पर मिस्टर गौरीशकर, प्रतिभा उस मिट्टी की बनी नही है, जो इन बाधाओं से ही रुक जाय।"

प्रतिभा के दीप्त नेत्रों और उग्र मुख मुद्रा को देख तथा उसका दृढ स्थिर स्वर सुन जैसे गौरीशंकर को अपनी आंख-कान पर विश्वास नही हो रहा था। विनय और संकोच की लाजवन्ती सी प्रतिमूर्ति प्रतिभा के मुंह से आज

वह यह सब क्या सुन रहा था ? प्रतिभा क्या बदल गई थी, या यही उसका असली रूप है, जो अभी तक परिस्थिति-वश ढका-मुदा था। अभी वह यह सब सोच ही रहा था कि प्रतिभा ने फिर कहना शुरू किया—"क्यों आप भी किसी सोच मे पड गए क्या ? मा और भाई के स्नेह ने आपके मन-मस्तिष्क पर गुलामी और परावलवन का बहुत गहरा रग चढा दिया मालम होता है उनसे अलग आपका कोई अस्तित्व है, यह शायद आप सोच ही नही सकते फिर उनसे अलग हो कर अपने पावों पर खडे होने की बात तो अभी बहुत दूर की है। मां और भाई की पराधीनता ने आपके आत्मविश्वास और स्वावलम्बन की प्रेरणा को जैसे मार ही दिया है। पर मैं उम्र-भर अपमान और पराधीनता के टुकडों पर पलने और आसू बहाने यहा नही आई हूँ। पशु की तरह पेट भरने से कुछ परे भी जीवन का अर्थ है। देश और समाज के प्रति भी तो हमारा कुछ कर्त्तव्य है।"

गौरीशंकर आखें फाड कर प्रतिभा की ओर एक टक देख और यह सब सुन रहा था। उसे ऐसा लग रहा था मानो कोई सुधारवादी फिल्म देख रहा हो। उसके मुँह से केवल एक ही बात निकली—"तो तुम मेरी और भाई साहब की इच्छा के विरुद्ध चलोगी ?"

"निस्सदेह"—सहज भाव से प्रतिभा ने कहा—"यह कोई बुरा काम तो है नही। फिर मै तभी ऐसा करूंगी जब कि मै अपना खर्च भी निकाल सकू। अगर मुझे आगे पढना ही है, तो मै व्यर्थ आप लोगों पर उसका बोझ क्यों डालूं ?"

"इसका मतलब हुआ कि तुम कही कुछ काम भी करोगी।"

"हां, मतलब तो यह साफ है।"

"तो यह बात है।"—कहते हुए गौरीशकर कमरे में इधर-उधर टहलने लगा। प्रतिभा कुतूहल-निश्चित मुद्रा से उसके चेहरे के भावो को पढने की चेष्टा करने लगी।

[ ३ ]

उस दिन जब प्रतिभा लौटी, तो गौरीशकर आ चुका था। कपडे उतार कर वह पखे के नीचे सुस्ता रहा था। मेज पर किताबें रख प्रतिभा जल्दी से

उसके पास आ गई और सहज भाव से बोली—"आज मुझे आने में देर हो गई। बुरा तो नहीं मान गए?"

"मैं बुरा मानने वाला होता ही कौन हूँ?"—गौरीशंकर ने उदासीनता दिखाते हुए कहा—"भला अब हमारी किसे परवाह है?'

"लो, फिर लगे न फालतू बाते करने। आज प्रोफेसर साहब ने फिर वही समानाधिकार का मसला छेड़ दिया। इस सम्बन्ध मे बाते करते हुए मुझे तो समय का ध्यान ही नही रहा। कितने अच्छे आदमी हैं वे! उनसे बातें करने मे समय का ख्याल ही नहीं रहता।"

क्यो प्रतिभा, प्रोफेसर तुमको बहुत पसन्द है—याने बहुत अच्छे लगते हे?

हा, अच्छे लगने लायक आदमी ही है वे।

मुझसे भी अधिक अच्छे लगते है तुम्हे वे?

गौरीशकर के पास आ और उसकी आखों मे घूरते हुए प्रतिभा ने जरा कडे स्वर मे पूछा—'क्या मतलब है तुम्हारा इस सवाल से? तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते हो या अपने मन का चोर बाहर निकाल रहे हो? छिः कितने संकीर्ण हृदय हो तुम?

गौरीशकर कुछ सकपका गया। फिर तनिक गम्भीर होकर बोला—"प्रतिभा, तुम्हारे मुह से रोज-रोज प्रोफेसर की प्रशसा सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गए। अगर प्रोफेसर तुम्हे बहुत पसन्द है, तो

'खबरदार जो मुह से कोई बेजा बात निकाली तो'—बीच मे ही टोक कर प्रतिभा ने दर्प पूर्वक कहा—"तुम अपनी जगह हो, प्रोफेसर अपनी। मेरा तुमसे जो सम्बन्ध है और मेरे मन मे तुम्हारे लिए जो स्थान ह, उसकी महत्ता और पवित्रता से मैं बखूबी वाकिफ हूँ। पर प्रोफेसर मेरे आदर और श्रद्धा के प्रतीक है। आज के युग मे ऐसे सच्चे सत्पुरुष कहाँ मिलते हैं? उनके विशाल उज्ज्वल व्यक्तित्व की छाया मे मानो शत-सहस्र वट वृक्षों की-सी शीतलता और शान्ति मिलती है।"

'बस, बस, यह बकवास बन्द करो'—गौरीशंकर ने तुनक कर कहा—शर्म नहीं आती तुम्हें पति के सामने पर-पुरुष की इतनी प्रशसा करते? क्या इतने पर भी तुम अस्लियत पर पर्दा डाल सकती हो?"

नही, शर्म की इसमें बात नही, मै उन मूढा अज्ञ स्त्रियों में से नहीं हू, जिनके लिए अकेला पति ही परमेश्वर है और शेष सब पत्थर की निर्जीव मूर्तियां। तुम्हारा और मेरा एक सांसारिक सम्बन्ध है, जो मन-मस्तिष्क से अधिक शरीर का है। पर मेरे मन और मस्तिष्क मे आदर और श्रद्धा का प्रतीक बनी ऐसी कई मूर्त्तियां है जो मेरी अराध्य है। प्रोफेसर भी उनमें से एक है

तो तुम उन्ही के पास क्यो नही चली जाती!—"झल्ला कर कुर्सी पर से उठते हुए गौरीशकर ने कहा—"मेरी छाती पर मूग दलने और रोज उसकी तारीफों के पुल बाध कर मेरा खून जलाने मे तुम्हें क्या मजा आता है?"

प्रतिभा सन्न रह गई। उसका सारा शरीर रोमाचित हो उठा। उसे अपनी आखों और कानों पर जैसे विश्वास नही हो रहा था। चित्र-खचित-सी उसकी आखें गौरीशकर की ओर खुली की खुली रह गई। पुरुष का मन—नही, नही पति का मन—कितना ओछा और संशयालु हो सकता है, उसे आज मानो नग्न रूप मे दिखाई दिया। पर उसके जी को जलाना ही गौरीशकर का उद्देश्य न था, उस पर नमक डालना भी अभीष्ट था। सो दरवाजे के पास रुक कर गौरीशंकर ने कहा—"आहा, क्या त्रिया-चरित्र की माया सीखी है तुमने? ऐसे देख रही हो, मानो तुम्हें कुछ पता ही नही! मै कोई मिट्टी का माधव नही हू, प्रतिभा। तुम मुझे जितना बुद्धू और भोला समझती हो, मै उतना तो शायद नही हूं। बहुत दिनों से पास-पडौस मे तुम्हारे इस नए 'रोमास' की चर्चा है। मां और भाई साहब तो इतने परेशान है कि मुझसे बात तक करना छोड दिया है। ज्यादा पढ-लिख कर तुम यह करोगी, इसका मुझे स्वप्न मे भी गुमान न था। आज हम लोग किसी के सामने आंख उठा कर देख भी नही सकते?"

प्रतिभा जैसे नीद से जागी। अश्वस्त स्वर में उसने कहा—"ओह, तो बड़े दिनों से अपने दिल मे जमा हुआ गबार निकाल रहे हो आज। पहले तो तुमने कभी ऐसी आशका प्रकट नहीं की? फिर इतने दिन तक साथ रह कर भी तुमने मुझे नहीं पहचाना और मुझसे अधिक उन लोगों पर विश्वास किया, जो नारी-स्वातन्त्र्य को फूटी आंखो भी देख नही सकते; जिन्हें दूसरों को बदनाम करने मे ही मजा आता है। पर खैर, जब बात यहां तक पहुंच चुकी

है तो तुम्हे जिस तरह भी विश्वास हो, इस बात के सच-झूठ का निर्णय कर लो। पर यह पहले बता दो कि इस बात के सच निकलने पर तो तुम जो चाहो, मुझे सजा दे सकते हो; लेकिन अगर यह बात झूठ, निराधार और कपोल-कल्पित साबित हुई, तो तुम क्या प्रायश्चित करोगे ? जानते हो, यह झूठा लांछन लगा कर तुमने मेरे मन मे अपना रहा-सहा स्थान भी खो दिया है। पति तो क्या, इन्सान के रूप मे भी तुम मेरी नजरों से गिर चुके हो। बुजदिल, नीच कही का।"

"जबान बन्द कर, प्रतिभा"—गौरीशकर ने डपट के स्वर मे कहा—नही तो अच्छा न होगा। हर बात की एक सीमा होती है। मैं तुझे इससे अधिक अपना अपमान नही करने दूंगा।"

"अपमान!"—मुंह बिरा कर प्रतिभा ने कहा—"तुम-जैसों का कोई आत्म-सम्मान है, जो अपमान होगा। नीच, कुत्ते कही के!"

"देख, जबान सम्भाल. . . . ."—दात पीस कर गौरीशंकर चिल्लाया

[ ४ ]

प्रोफेसर ज्योतिरिन्द्र वसु एकाकी जीव थे। जिस प्रकार किसी विशाल पर्वत को किसी एक ओर से देख कर उसके सम्पूर्ण रूप का अन्दाज लगाना कठिन है उसी प्रकार उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जानकारी भी कठिन थी। अपने बारे में वे कभी किसी से कुछ कहते ही न थे। विवाह उन्होंने क्यों नही किया और विश्वविद्यालय से मिलने वाला सारा वेतन निर्धन छात्र-छात्राओं मे बांट कर वे अपनी गुजर-बसर कैसे करते थे, उस बारे में लाख पूछने पर भी उन्होंने कभी कुछ नहीं बताया। पर नीरस वे बिलकुल नही थे और जरा-सा उनके हृदय मे प्रवेश पा जाने पर तो न सिर्फ ज्ञान का अपूर्व खजाना ही हाथ लग जाता था, बल्कि एक ऐसे उज्ज्वल व्यक्तित्व के दर्शन भी होते थे, जो आज के मानव-समाज में दुर्लभ ही समझिए। उनके व्यक्तित्व के पारस-स्पर्श से न जाने कितने व्यक्ति सुवर्ण बन चुके थे।

संकट के समय इन्ही के वरद हस्त ने प्रतिभा की रक्षा और सहायता की। प्रोफेसर के रूप मे उसे गुरु ही नही, एक अगाध स्नेहशील पिता भी मिला और वह बिलकुल भूल ही गई कि प्रोफेसर उसके असली पिता नहीं हैं प्रोफेसर ने भी प्रतिभा मे मानो साक्षात प्रतिभा के दर्शन किये। परि-

स्थितियां, बाधाए, अभाव आदि जैसे उसे रोक ही नही पाते थे। कभी-कभी प्रतिभा के मुह से नारी के पीडन-शोषण की बाते सुन कर प्रोफेसर रोने लगते थे। प्रतिभा से उन्होंने यह प्रतिज्ञा करवा ली थी कि पढ-लिख कर वह केवल जीविकोपार्जन ही नही करेगी, बल्कि अपनी पीडित-ताडित बहनो के उद्धार के लिए भी कुछ करेगी। इसीलिए पढाई के बाद और कभी-कभी पहले या बीच मे भी नारी-पीडन के संवादों की चर्चा दोनों बडी हार्दिक भावना के साथ किया करते थे।

आज प्रोफेसर बार-बार घडी देख कर मन-ही-मन कह रहे थे कि पता नही, प्रतिभा अभी तक क्यों नही आई। अधीर हो कर वे कमरे मे टहलने लगे। फिर खिडकी से देखा, तो गौरीशकर के मकान के आगे कुछ लोग जमा देखे। उनकी कुछ समझ मे आया। दो-एक मिनट कुछ सोचने के बाद वे चप्पल पहन कर उस ओर चल दिए।

घर के बाहर गौरीशकर को दौड-धूप करते देख वे और शशोपज मे पडे। उसके पास जा कर वे कुछ पूछना ही चाह रहे थे कि गौरीशंकर ने आखों मे आंसू भर कर अभिनय के पूरे कौशल के साथ कहा—"प्रोफेसर साहब, मैं तो लुट गया। मेरा सर्वस्व छिन गया! किसी तरह मुझे सहारा दीजिए। बल दीजिए कि मैं इस आघात को सहन कर सकू।"

"पर माजरा क्या है? मेरी तो कुछ समझ मे नही आ रहा है।" प्रोफेसर ने कहा।

"ओह, आपको सूचना भिजवाना तो भूल ही गया था। कल रात को हृदय की गति बन्द हो जाने से अचानक प्रतिभा का देहावसान हो गया। मेरी तो जान ही निकल गई, प्रोफेसर साहब, अब मै क्या करूँ? मेरा क्या होगा?"

प्रोफेसर को जैसे काठ मार गया। एक क्षण वे सन्न रह गए। फिर गौरीशंकर की ओर देख कर पूछा—"हार्टफेल! आपको ठीक मालूम है हार्टफेल ही हुआ है।"

"जी हा, जी हा"—कह कर गौरीशंकर इधर-उधर देखा और फिर विनीत स्वर मे बोला—"आप से फिर बातें करूंगा। अब जरा अर्थी को उठवाने की जल्दी करनी है, वर्ना फिर धूप चढ आयेगी।"

प्रोफेसर कुछ कहे, इससे पहले ही गौरीशंकर उन्हे आशंकाओं और दुश्चिन्ताओं के भँवर में छोड कर घर के भीतर चला गया।

थोडी देर बात अर्थी उठाई गई और चार आदमियों के कन्धों पर उमे श्मशान की ओर ले जाया जाने लगा। प्रोफेसर ने कन्धा देना चाहा, पर उनके दुर्बल स्वास्थ्य को देख कर उनसे वैसा न करने का अनुरोध किया गया। वे मान गए और चुपचाप अर्थी से कुछ कदम पीछे उसके साथ-साथ हो लिए।

कुछ तो अपने स्वभाव के कारण और कुछ गर्मी के कारण प्रोफेसर नीचे जमीन की ओर ही देखते हुए चल रहे थे। एक जगह उन्हें सडक पर खून की एक बूंद दिखाई दी। परन्तु इस समय उसके बारे में सोचने की उनकी मनोदशा कहां थी? पर शीघ्र ही दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी, फिर पाचवी... इस प्रकार खून की बूदों की एक कतार-सी दिखाई दी। एक क्षण के लिए प्रोफेसर किसी सोच मे पडे, फिर न जाने क्या सोच कर आस-पास के लोगों को हटा कर वे अर्थी के बिल्कुल निकट पहुच गए और गर्दन झुका कर उसके निचले भाग को देखने लगे। बीच का हिस्सा कुछ अधिक नीचे झुका-सा दिखाई पड रहा था और उस स्थान से कोरे कपडे में से छन-छन कर चन्द लगनहों के अन्तर से खून की बूदे टपक रही थीं। प्रोफेसर की आंखों के आगे अधेरा छा गया और वे वही गिरते गिरते बचे। उनके पाव लड़खडाते देख कर एक व्यक्ति ने कहा—"आपकी तबीयत ठीक नही है प्रोफेसर साहब, आप श्मशान चलने की तकलीफ न करे। चलिये, आपको घर पहुंचा देते हैं।"

उस आदमी की सहायता से प्रोफेसर आये और बैठक मे रखे सोफे पर लंबे पड रहे। पता नही कब तक वे उस अवस्था मे वहा पड़े रहे।

*  *  *

दूसरे दिन सुबह भगी ने आ कर बताया कि प्रतिभा की हत्या करने के भियोग मे गौरीशंकर, उसका बडा भाई और मां गिरफ्तार कर लिए गए हैं। लाश डाक्टरी परीक्षा के लिए भेजी गई है। सुना है कि लाश की पसली की दोनों हड्डियां टूटी हुई हैं।

# इकलाई

[ श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्सा ]

बात अब से दस बरस पहले की है, पर सुनिया के मन पर तो वैसी ही उजली उजली फैली है मानो कल ही वह घटना हुई हो। जैसे कल ही तो विसेसर ने उसे वह सुनहरे फूलों वाली इकलाई ला कर पहनाई हो। साडी तो वह कई बरस हुए फट गई। बहुत सम्हाल कर पहनने पर भी इकलाई फट ही तो गई। जहा तक पैवन्द लग सकते थे और सिलाई गुथाई हो सकती थी, करने मे सुनिया ने कोर कसर नही रखी, पर कपडा तो आखिर कपडा ही है। फिर जब इस लडाई के और उसके बाद के इतने सालों मे व्याह के जोडे के अतिरिक्त वही एकमात्र धराऊ कपडा था, जो तीज त्योहार, नाते रिश्ते में पहन कर सुनिया ने काम चलाया। तो आखिर एक दिन तो उसे तार तार होना ही था। हा, उसकी यादगार स्वरूप उसकी किनारी को उतार कर उसने उसे अपने पुराने लकडी के बक्स मे रख लिया है कि शायद कभी उसे मलमल नाम की दुर्लभ वस्तु पाच क्या साढ़े चार गज भी मिल गई तो वह उस पर ही उस किनारी को एक बार और टांक लेगी। पर मलमल तो क्या बाजार मे गाढ़ा गजी तक ऐसे नदारद है जैसे दुकानदार अब अतलस, कम-ख्वाब, सिल्क और साटन के अतिरिक्त और कुछ बेचना भूल ही गये हों। उसके देखते सुनते इन सालो के बीच कई बार सुनाई हुई कि कपडे पर कन्ट्रोल हो गया है। अब सब को कन्ट्रोल की दूकान पर से उसकी जरूरत के माफिक कपड़ा मिलेगा। और कन्ट्रोल हुआ भी। पर सुनिया के यहां तो कभी ढंग का कपड़ा आया नही। एक तो इस महगाई के मारे गांठ मे कभी चार पैसे सुभीते मे रहते ही नही और जैसे तैसे पैसे भी जुटाओ तो उस कन्ट्रोल की दूकान पर लाइन में कई रोज खडे हो कर सौ सौ धक्के खा कर जितना कपडा मिलता था, उसमें इकलाई तो कभी मिली ही नही छोटे पने की मोटी जनानी धोती

जो कभी मिली भी, तो घर मे तीन स्त्रियों के बीच वह धोती, ऊंट के मुह में जीरे की भाति, छीन झपट मे ही चली जाती।

और सुनिया तब उलट पलट को वही दस बरस पुरानी इकलाई वाली घटना को दोहरा लेती उसका गौना हुए दो बरस हुए थ तब बिरादरी की रोटी देने मे उस सस्ते के जमाने मे भी तीस रुपया कर्ज हो गया था बिसेसर पर। मौसी की हसली भी गिरवी पड गई थी। सो दो बरसो में तन पेट से बचा कर वह कर्जा जब उतर गया, तो बिसेसर सुनिया के लिए पहली बार कुछ कपडा लेने बाजार गया।

लौटा तब दिये जल चुक थे। सुनया रोटी बना रही थी। विधवा बूढी मौसी और बुआ बाहर के छप्पर मे बैठी किसी की नई ब्याही बहू के गुण दोषों की मीमांसा मे जुटी हुई थी।

बिसेसर ने बगल का बण्डल खटोले पर रख दिया और बीडी का अन्तिम कश खीचा और उसे फेंक कर अन्दर को मुँह कर के बोला—"तनिक एक लोटा जल दे जाओ बडी पियास लगी है।"

सुनिया घूघट काढे आकर कटोरे मे चार बडे बतासे और लोटा भर पानी ले आई। बतासे उसी नई बहू के घर से आये थे। मोसी ने इतने मे बडल खोल डाला था धुधली टूटी चिमनी वाली लालटेन की रोशनी मे भी उस बंडल में लिपटी साडी की किनारी देख कर मौसी का मुह खुला रह गया आखों पर विश्वास न आया, तो हाथों से टटोल कर उस साडी के मुलायम कपडे पर हाथ फेरने लगी

बिसेसर तनिक मुसकराया, फिर बोला—"कैसी लगी धोती मौसी? बाजार भर छान कर लाया हूँ।"

"कितने की है?" बुआ ने भी उजाले मे किनारी परखते हुए पूछा।

"तुम्ही बताओ कितने की होगी?" बिसेसर ने तनिक गर्व मे कहा। मौसी चिढ गई।

तिनक कर बोली—"न बाप दादों के राज मे और न खसम के राज में कभी ऐसी साडी पहनी। बाप रे, कैसा महीन तार है इसका। मुट्ठी में दबा लो। दाम क्या बतावे। होगी यही तीन-एक रुपये की। जासती चाहे हो, कम की तो है नही।"

"ढाई रुपये दो, पैसे की।" बिसेसर ने उत्तर दिया, लाला तो पौने तीन स कम करता ही न था, पर आखिर हम भी मजूर है तो क्या बडे बडो से काम रखते है। सैकडों बार लाला का माल टेसन से ढो कर लाया हूँ। साढ तीन आने छुडा ही तो लिए। लाला भी बोला, ले जा बेटा, तुम रोज के हमारे आदमी हो एक साडी मे चार आने का घाटा ही सही, किसी और भागवान से पूरा हो जायगा।"

"ढाई रुपये।" मौसी सन्न रह गई। भला नित रोज पहनने की साडी ढाई ढाई रुपये की आने लगी, तब तो सुनिया रह ली इस घर में। आठ आने गज तो जापानी रेशम मिलता है। तीन रुपये मे तो व्याह का लहंगा वन जाय। क्षुब्ध स्वर मे बोली—

"मे कहता हू बिस्सू तेरी अकिल को क्या हो गया है ? ढाई रुपये मे तो काली किनारे की तीन मोटी धोती आ जाती जो दो वर्ष भी न फटती। भला, इतना बारीक कपडा क्या हम मजूरिनों की बहू बेटियों के पहिनने की चीज है ? अरे बहू को अपनी अमीरी ही दिखानी थी, तो दस रुपये की नई चाल की पाजेबें बनवा देता। बहुत धन जमा कर लिया था तो मुझे भी एक जोडी बनवा दे। भला कपडे मे इतना पैसा फेकना

मौसी के जी की जलन का मजा लेकर बिसेसर जरा हंस कर बोला। "तू भी मौसी कैसी बाते करती है। अरे क्या गहने गढ़ाने को दस बीस न हों तो अच्छा कपडा भी न पहिने भगवान चाहे तो दो तीन महीने मे पायजेब भी बनवा दूंगा। अब जब कपडा लेने ही गया था, तो मुझसे तो रद्दी चीज ली नही जाती। वैसे तो ढ़ाई रुपये मे कुरता भी आ जाता, पर मै तो एक रुपया उधार करके डिमास का जम्पर सिलने दे आया हूं। अरे जब लेना ही ठहरा तो बढिया माल क्यों न ले।"

तो मखमल का लहगा सिला दे न। क्या बाजार में मखमल नही बिक रही थी ?"

"अरे बुआ ! तुम भी चहकी" बिसेसर ने उटते हुये कहा ! क्या नही है बाजार में ? गांठ मे पैसा होना चाहिए। बिलायत की मेम तक खरीदी जा सकती है। एक एक दूकान पर वो वो बढिया किनारे की धोती साडी लटक रही है कि देखते रह जाओगी। अच्छा, तारीफ नही करोगी कि मोतियों

के बीच में हीरा चुन लाया। जब तेरी ये बहू पहनेगी तो चमक उठेगी। क्यों मौसी।''

मौसी ने जल भुनकर कहा—"चमकेगी क्यों नही? इतनी पतली साड़ी में तो अंग अंग चमकेगा। अच्छा तो है, टोले पडोस में सभी को बहू के दर्शन हो जायेंगे।"

"तू भी मौसी बस यू ही रही बाल सफेद हो गए, पर अकल नही आई। अरी बाबू लोगों की घर वाली तो नित रोज इकलाई ही पहनती हैं। क्या वे नंगी दीखे है? क्या नाम उसका. . .पेटीकोट. .हा, यहो तो दो गज लट्ठ म सिल जायेगा। दो आने गज का लट्ठा ले लेना उस दुर्गा बजाज से, जो फेरी करने आता है। और लाला जी की बहू से मसीन करा दूगा।"

मौसी मुह में ही बडबडाती हुई उठ कर बाहर चली गई। पडोस में चार घर कह कर जी का दुख निकल जाता है न। बआ भी रमज की बीमार घर वाली को देखने जाने का बहाना करके चल पड़ी। कपड़े पर इतनी पैसे की बरबादी दोनों बद्धाओ को असह्य हो रही थी। गहन पर रुपया खर्चना तो उनकी समझ में आता था क्योंकि गहने ही तो उनका वह समस्त आधार होते है जिस पर गरीबों के अधिकाश काम हो जाते है। बेरोजगारी मे उन्हें ही आधे दामों मे बेंच कर पेट की समस्या हल होती है। बीमारी हारी में उनको ही गिरवी रख कर दवा दारू दूध का इन्तजाम होता है। यही नही मरने पर कफन काठी के लिए गहने ही अन्तिम सहारा होते है। चांदी के वे चन्द गहने जो तन पेट में रूखा सूखा खा पहन कर बनवा लिये जाते है, मौसी की समझ मे वही पेट भरे का सिंगार और सूखे का आधार होते है। पर इन नई रोशनी के छोकरों को वह क्या कहें। उस दिन वह गई रात तक पडोस में अपने घर की इकलाई पहनने के फैशन की चर्चा करती रहीं। और उस उतने आमानों की इकलाई को जब पहले पहल मुनिया ने पहिना था तो उसकी समस्त देह में गुलाब खिल उठे थे। और बिसेसर ने मन मे सोचा कि अब आगे से इसे इकलाई ही पहनाऊँगा।

पर दोबारा इकलाई पहनाने की नौबत नहीं आई। क्योंकि इस बीच बिसेसर बीमार पड गया। और एक लडकी का बाप भी बना। दोनों ही खर्चे

इतने भारी थे कि सुनिया के कपडे, परिवन्द और लच्छे गिरवी रख कर ही पार पाया।

बिसेसर ने अपने जान अच्छे होकर जी तोड मेहनत करी। यही नहीं, सुनिया भी, जो कभी आस पास के बडे घरों में कूटना पीसना मिल जाता तो कूटती। पर ये सात समुन्दर पार जो कही जर्मनी वाले से लडाई छिड गई थी, इससे महंगाई जो बढी तो कही रुकने का नाम न लेती थी।

कर्जा उतार कर चीजें छुडाने में दो बरस लग गए। तिस पर बाजार में कभी गेहूं गायब हो जाता, तो कभी मिट्टी का तेल। और तो और एक बार नमक और रेजगारी तक मिलनी बन्द हो गई थी। मजूरी मे बढती न हुई। सो बात नही। पर मजूरी मे अगर रुपये मे चवन्नी बढ़ी, तो चीजे अठगुनी दसगुनी चढ गई थी।

सुनिया हैरान होकर पूछती—"क्यों जी, क्या मिट्टी का तेल भी लडाई पर जा रहा है ? चीनी भी ? कोयला लकडी भी ?"

बिसेसर पढा नही तो क्या, शहर के सभी लोगों की उडती उडती बाते तो सुनता है। पत्नी के भोलेपन पर हंस कर कहता—"तू भी बस यू ही है। अरी सिपाहियों को क्या वहा कुछ नही चाहिए। अब तो सबुर कर के दिन काट। जब लडाई बन्द हो तो चीनी खाइयो। दीये जलाइयो

और सुनिया बड़े सब्र से सालों के अंधेरे मे रोटी करती रही। कभी बाजरे से भूख बुझाई, कभी वाल वच्चों को शकरकन्दी उबाल कर ही पेट का आधार कराया। हे भगवान्, लडाई बन्द हो जाये तो वह महावीर जी को सवा सेर का रोट चढावेगी। बात यह है कि और देवता तो घी का पकवान मागते हैं पर महावीर जी को तो तेल का रोट चढ़ा कर भी काम चल जायगा।

इकलाई वहुत सम्हाल सम्हाल कर पहिनने पर भी फटने लगी। कई बार बिसेसर पांच सात रुपये तक जेब मे डाल कर वैसी साड़ी लेने के लिए बाजार गया। पर दूकानों पर तो उसने वैसे कपडे किनारी की झलक भी न देखी। हां, सुनिया ने उसे बताया जरूर कि लाला दीपचन्द की बहू अब भी वैसी इकलाई पहनती है। पर उन्नीस रुपये की एक मगाई है। "उनका क्या राजा आदमी है।" बिसेसर ने कहा—"लडाई खतम हो तो जरा सस्ता होने पर एक बार इकटठी ही चार पाच इकलाई ले दूगा।" सुनिया भी आश्वस्त हो

कर कहती "हा जी, बिटिया भी सयानी हो गई। एक दो कपडा उसके लिए भी तो रखना होगा।"

आज सुनिया की लडकी की सगाई होने वाली है नौ बरस की बिटिया उनकी दृष्टि मे वहुत बडी हो गई है। महीना पहले से ब्लैक से जौ मटर खाकर वह राशन का गेहू बचा कर रखती रही है। चीनी भी इकट्ठी कर ली है। घी तो खैर असली मिल ही नही सकता, इसका उसे ध्रुव विश्वास है। इसी से डालडा लेने तक के लिये भी लाइन मे खडा होना पडता है। परसो मौसी तीन घण्टा धूप मे तप कर कही ला पाई है। बढ़िया चावल तो ढूढने पर भी कही नहीं मिला वही राशन का मोटा अरवा चावल ही मेहमानों को खिलाना होगा। पर मुसीबत है कपडे की। कपडा तो जैसे सपना हो गया है। सुनिया बेचारी तो समझ ही नही पाती कि वे अच्छे दिन कहा चले गए जब गाठ मे पैसा होने से दुनिया भर की चीजे आ जाती थी। लडाई बन्द हो गई। सुराज भी मिल गया। नेहरू जी राजा भी हो गए पर महंगाई रत्ती भर भी नही घटी। कपडा तो महगा सस्ता कैसा भी नही मिलता। भला समधी के सामने वह ब्याह का जोडा पहने भली लगेगी ? नही जी, जैसे भी हो एक किनारदार अच्छी धोती तो मगानी ही पडेगी। एक धोती के लिए इससे अधिक दामों की कल्पना सुनिया कदाचित् सात जन्म भी नही कर सकती। उसने अपनी गोलक तोडी। उसमे सोलह रुपये सात आने निकले।

जैसे कलेजे के टुकडे अपने हाथों बिसेसर को सौप रही हो, उसी तरह वे रुपये उसके हाथों मे रखती हुई वह बोली—"देखो जी ! जैसे भी हो एक धोती जरूर ले आना।"

बिसेसर क्या चाहता नही कि सुनिया अच्छा कपडा पहिने ?

आज ही कन्ट्रोल से कपडा मिलने की खबर है। वहा अच्छी इकलाई तो क्या मिलेगी। पर जो भी मिले, ले आवेगा। अगर मरदानी धोती मिल गई तो वही सही। पुरानी किनारी उसी पर टांक लेगी, रंग लेने पर सब ऐब ढंक जायेगा।

दोपहर में मेहमान लोग आ गये। बिसेसर कपड़ा लेने गया था। सुनिया मोटी मैली धोती पहिने कोठरी में दुबकी रही। बस मौसी ही ने हुक्क तमाखू और शर्बत पानी देने का जिम्मा ले रखा था।

बिरादरी के पाच छः बजे तक आ जायंगे। सुनिया ने कोठरी में ही धुयें और गर्मी से झुलसते हुए पूरिया पुये कचौडी सब कुछ बनाया है। रह रह कर छप्पर की ओर ताकती कि शायद बिसेसर साडी ले कर आता होगा।

पांच बजे पसीने से तर, धूप मे दिन भर खडे रहने से काला पडा चेहरा लिये बिसेसर लौटा कन्ट्रोल की दूकान से। पाच गज मोटी मारकीन और चार गज पतला डोरिया मिला था।

अन्दर जा कर बन्डल पत्नी के हाथो में रख दिया।

सुनिया ने आटा सने हाथों से ही बन्डल खोल डाला।

"और साडी ?" उसने मारकीन की तहे अच्छी तरह टटोल कर पूछा।

"बस बस साडी वाडी यही है। सारे दिन लैन मे खडे होकर यही मिला है। इसी मारकीन पर टाट की किनारा जड कर पहन लीजो " बिसेसर ने जले स्वर मे उत्तर दिया।

"अरे तो क्या पन्द्रह रुपये में भी इकलाई नही मिली ? लडाई खतम हुए भी सालों हो गये।"

"लडाई साली क्या करेगी ....बिसेसर फूट पड़ा"—जब तक इन चोर बाजारी करने और काला मुनाफा करने वालों का सत्यानाश न होगा, कोई चीज भी मिलनी कठिन है। जानती है बाजार में किसी ने भी सूती बढिया इकलाई होने की हामी ही नही भरी।..........

भला मजूर के मैले फटे कपडे क्या इकलाई खरीद सकते है ? एक सूरजमल ने बहुत चिरौरी करने पर कही भीतर से ला कर दिखाई भी तो दाम जानती है क्या मागे ! इक्कीस रुपये। इन दामों माल न भी बिके तो उनकी बला से। चोर बाजारी की कमाई थोडी कर ली है उन्होंने।" सुनिया सब रुआंसी हो कर कपडे रखने चली। लकड़ी का बक्स खोल कर उस पुरानी किनारी को हसरत से टाक पर उसने मारकीन उसी मे रख दी। और पुराने ब्याह के लहगे की तहें खोलने लगी।